पं0 दीनदयाल उपाध्याय जन्मशताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में प्रकाशित

भारतीय अस्मिता की निरन्तरता

प्रकाशक

अरुंधती वशिष्ठ अनुसन्धान पीठ

भारतीय अस्मिता की निरन्तरता

संपादक
डॉ. चन्द्र प्रकाश सिंह

अरुंधती वशिष्ठ अनुसन्धान पीठ

ISBN-978-81-931312-4-4

© अरुंधती वशिष्ठ अनुसन्धान पीठ

संस्करण : प्रथम-2017

प्रकाशक
अरुंधती वशिष्ठ अनुसन्धान पीठ
महावीर भवन, 21/16, हाशिमपुर रोड, टैगोर टाउन
इलाहाबाद-211002, दूरभाष : 0532-2466786
E-mail : nationalthought@gmail.com
Web : www.avap.org.in

मूल्य : रु. 150

Printed and Published by Dr. Chandra Prakash Singh at Allahabad for Arundhati Vashishtha Anusandhan Peeth, 21/16 Mahaveer Bhawan, Hashimpur Road, Tagore Town, Allahabad-211002

Printer- Tirupati Enterprises, Civil Lines, Allahabad
Mob.: 9451372545

विषय सूची

	सम्पादकीय	iv-vi
1.	**The Continuity of Indian Identity** Dr. Subramanian Swamy	1
2.	**भारतीय अस्मिता की निरन्तरता के अध्यात्मिक अधिष्ठान** स्वामी संवित् सोमगिरि जी	20
3.	**भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता की व्यापकता** डॉ. सुभाष चन्द्र कश्यप	34
4.	**भारत की आर्थिक अस्मिता** डॉ. बजरंग लाल गुप्त	41
5.	**भारतीय पुरातात्विक अस्मिता** डॉ. राकेश तिवारी	49
6.	**भारतीय अस्मिता के आधारभूत तत्त्व** डॉ. महेश चन्द्र शर्मा	54
7.	**भारतीय अस्मिता और गाय** डॉ. रामस्वरूप सिंह चौहान	62
8.	**भारतीय अस्मिता की न्याय एवं विधि के क्षेत्र में निरन्तरता** अशोक मेहता, ओम प्रकाश मिश्र	70
9.	**भारतीय अस्मिता की शिक्षा में निरन्तरता** प्रो. कल्पलता पाण्डेय	92

संपादकीय

राष्ट्र की संकल्पना का प्रथम दर्शन वैदिक ऋचाओं में होता है, लेकिन भारत की एक राष्ट्र के रूप में अस्मिता कब से है, इसका निर्धारण ऐतिहासिक दृष्टि से करना अत्यंत कठिन ही नहीं अपितु असंभव है। कालक्रम में अनेक आक्रमणों एवं संकटों के आरोह-अवरोह का सामना करते हुए भी भारत की एक राष्ट्र के रूप में अविच्छिन्न अस्मिता सतत् बनी हुई है, जबकि दुनिया के रोम, यूनान, मिस्र जैसे अनेक प्राचीन राष्ट्र वाह्य आक्रमणों एवं संकटों का सामना नहीं कर पाने के कारण उसी भू-भाग पर वंश परम्परा की निरंतरता के रहते हुए भी उस राष्ट्र की अस्मिता की निरन्तरता को बनाये नहीं रख सके, क्योंकि कोई राष्ट्र एक विशेष भू-भाग और वहाँ रहने वाले लोगों के संयोग मात्र से उत्पन्न नहीं होता।

आज पाश्चात्य अवधारणा के कारण हमारे समाज की राष्ट्र विषयक अवधारणा भ्रमित हो गई है। पाश्चात्य शिक्षा पद्धति पर आधारित शिक्षा व्यवस्था में हम केवल राष्ट्र की भू-राजनैतिक सत्ता को ही राष्ट्र की मूल सत्ता मान लेते हैं। वास्तव में हमारा 'राष्ट्र' और पाश्चात्य 'नेशन' समानार्थी शब्द नहीं है। राष्ट्र की अवधारणा व्यापक है। वह एक प्राकृतिक चैतन्य इकाई है। उसकी एक ऐसी सत्ता है जिसकी अपनी एक विशेष चेतना होती है, जिसे राष्ट्र की आत्मा कह सकतें हैं। उस चैतन्य राष्ट्र का अपना एक विशेष जीवन तथा एक विशेष ध्येय होता है। उस ध्येय को प्राप्त करने के लिए राष्ट्र अपने समष्टिगत शरीर, मन और बुद्धि के द्वारा प्रयत्नशील रहता है। इसका प्रकटीकरण उसके नागारिकों के समक्ष एक व्रत, विचार और आदर्श के रूप में होता है। समाज की संस्कृति, परंपरा और इतिहास की रचना उसी ध्येय की सिद्धि की तरफ अग्रसर होने की विकास यात्रा के रूप में होती है अर्थात् संस्कृति, परंपरा और इतिहास राष्ट्र की आत्म-चेतना

के प्रकटीकरण का प्रतिफल है।

प्रत्येक काल-खण्ड में राष्ट्र की अस्मिता रूपी चेतना की निरंतरता को राष्ट्र अपनी संस्कृति एवं परंपरा के माध्यम से राष्ट्र जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रकट करता है। भारत की यह राष्ट्रीय चेतना समन्वयात्मक, समग्र और एकात्मवादी है, तथा सम्पूर्ण मानव जीवन का एवं सम्पूर्ण सृष्टि का समग्र विचार करती है। संसार में एकता का दर्शन कर, उसके विविध रूपों में परस्पर पूरकता को पहचान कर, उनमें परस्परानुकूलता का विकास करना तथा उसका संस्कार करना ही भारतीय चेतना का लक्षण है, जिसका प्रकटीकरण भारतीय समाज जीवन के सभी क्षेत्रों में निरंतर होता रहा है। विविधता में एकता अथवा एकता के विविध रूपों में प्रकटीकरण की एकात्म चेतना ही भारतीय संस्कृति का केन्द्रस्थ विचार है। यह युगों-युगों से हमारी संस्कृति एवं परंपरा के माध्यम से विविध क्षेत्रों में प्रकट होता चला आ रहा है।

आज हमारी राष्ट्र की अवधारणा दिग्भ्रमित हो गई है। राष्ट्र-जीवन के प्रवाह को सरल, सहज, स्वभाविक एवं शक्तिशाली बनाए रखने के लिए हमें राष्ट्र की अस्मिता को न केवल समझना और अनुभव करना होगा अपितु उस संवेदना के आधार पर सम्पूर्ण राष्ट्र जीवन को पुनः खड़ा करना होगा तभी हम वास्तविक स्वतंत्रता की अनुभूति कर सकेंगे।

पूँजीवाद एवं समाजवाद जैसी आयातित विचारधाराओं के आधार पर विकसित भोगवादी संस्कृति के प्रभाव से व्यक्तित्व का विखंडन, सामाजिक संघर्ष, पर्यावरण असंतुलन आदि समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। इनसे मुक्त होने के लिए भारत की आत्म चेतना अर्थात् अस्मिता को पहचानना होगा, जो देश, काल एवं परिस्थिति के अनुसार हमारे राष्ट्र जीवन के विविध क्षेत्रों जैसे- संस्कृति, परंपरा, अर्थ-व्यवस्था, राज्य-व्यवस्था, न्याय, विधि, शिक्षा आदि को समायोजित एवं अनुकूलित करती रही है। आज पुनः समन्वयात्मक, समग्र और एकात्मवादी चेतना के आधार पर राष्ट्र जीवन की संरचना को आगे कैसे बढ़ाया जाए, इसके लिए विविध क्षेत्रों में भारतीय अस्मिता की निरंतरता को पहचानने के लिए गहन अध्ययन एवं अनुसन्धान की आवश्यकता है।

उपरोक्त उद्देश्य के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्र की चिति के द्रष्टा ऋषि पं.

दीनदयाल उपाध्याय की जन्मशताब्दी वर्ष के अवसर पर अरुंधती वशिष्ठ अनुसन्धान पीठ द्वारा ''भारतीय अस्मिता की निरंतरता'' विषय पर दिनांक 14-15 जनवरी 2017 को दिल्ली विश्वविद्यालय में द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी में विविध विषयों पर भारतीय अस्मिता को उद्घाटित करने वाले कुछ प्रमुख विद्वानों के व्याख्यानों एवं आलेखों का इस पुस्तक में प्रकाशन किया जा रहा है। इस पुस्तक के पुनरीक्षण में सहयोग के लिए डॉ. चन्द्रमौलि त्रिपाठी का आभार प्रकट करता हूँ। आशा है यह पुस्तक सुधी पाठकों को भारतीय अस्मिता की निरंतरता की अनुभूति कराने में सहायक सिद्ध होगी।

गुरुपूर्णिमा : 9 जुलाई, 2017

चन्द्र प्रकाश सिंह

(डॉ. चन्द्र प्रकाश सिंह)

THE CONTINUITY OF INDIAN IDENTITY:

Subramanian Swamy[1]

I. INTRODUCTION

Since Independence from colonial rule in 1947, Indians have been grappling with the question of 'who are we'? This is as yet a fully unanswered question and this represents modern India's identity crisis.

Since becoming free of British Imperialist rule in 1947, modern India's ideological space had been for the first four and half decades dominated and circumscribed by an essentially pro-Soviet Union and socialist, secular, and ostensibly democratic framework with little room left or tolerated in the then mainstream of thought for another different ideological perspective that was rooted in India's unbroken civilizational past, founded on Hindutva.

The Left-leaning intellectuals saw India created as a by-product of British Imperialism and colonisation, as a new multi-national, multi-racial, and multi-lingual State. They, therefore, vehemently denied a single modern Indian identity. Instead these intellectuals' fundamental premise is that there never was an India before the British Imperialist had put one administratively together.

This concept of multi-identities held the field for five decades because of the Soviet-aided Left patronage to it, and the concomitant Left-enforced ostracization and wilderness for others

---

[1] . Ph.D. (Harvard). Dr Swamy, an eminent economist and a renowned political thinker, is also a former Union Minister for Commerce, Law & Justice, Government of India; and a former Professor of Economics, IIT, New Delhi.

who had differed from this view.

With the collapse of the Soviet Union in 1991 and the evaporation of its monetary and career patronage in India, the main Left-leaning intellectuals found themselves in disarray. Many like Amartya Sen migrated abroad, principally to the academia in the US, leaving behind an ideological vacuum, in particular on the concept of a modern Indian identity.

Therefore my purpose here today is to fill this ideological vacuum by proposing an alternative substantive and truthful concept of identity of a modern Indian that is rooted in the *reality* of India's civilizational past and excised of the *myth* surrounding it from two centuries of British Imperialist rule of India, and thereby seek to fill this ideological vacuum.

II. THE NEED TO RECOGNIZE THE CONTINUITY OF INDIAN IDENTITY

Writing a research paper in l916 titled "Castes in India; Their Mechanism, Genesis, and Development" for an Anthropology Department seminar at the prestigious Columbia University in New York, Dr. Ambedkar stated:

> "I venture to say that there is no country that can rival the Indian Peninsula with respect to the unity of its culture. It has not only a geographical unity, but it has over and above all a deeper and much more fundamental unity - the indubitable cultural unity that cover the land from end to end".[1]

Dr.Ambedkar said 95 years ago what is most relevant to say today. He understood and had the courage and erudition to say that the British had manipulated our history to suit their ends. The fault lines and flaws in the present perception of India's past are incompatible with a people forming a great nation and a major obstacle to developing a strong and coherent concept of national identity whose defining characteristics can be culled only from a

[1] Indian Antiquary. vol.XVL May, 1917. p.94.

correct perception of India history.

The concept of Indian Identity is to be distinguished from Indian citizenship. Identity [in Sanskrit it is *Asmita*] in a continuing unbroken civilization of a defined geographical area [*Asetu Himalayan*] is the citizen's assimilation of his values and aspiration with his or her ancestors, the understanding of the true historical past, its continuing ancient culture, the accepted norms of interpersonal communication, the common aspiration of his fellow citizens, and the commitment to defending these at any cost. Indian citizenship is defined in the Constitution [Articles 5 to 11, 18, and Citizenship Act (1955)]. Article 8 bars dual citizenship.

With the dismantling of the USSR into sixteen sovereign countries in 1991, and the balkanization of Yugoslavia into four in 1995, it is now clear that political ideology cannot by itself create social cohesion and preserve national integrity.

We have also seen that religion cannot by itself be the glue to keep a people together as a nation, as demonstrated in Pakistan in 1971 and Indonesia recently. A single race also cannot be a sufficient adhesive as shown by the prolonged conflicts in Sri Lanka and Nigeria, where a people of one race have been in civil war.

Hence we need to recognize that it is the continuity of Indian identity that has kept for centuries, and what will keep in the future, Indians together as a nation.

Despite India's impressive record of keeping its integrity intact, it has been long predicted, from Winston Churchill to Richard Nixon to recent Chinese blogs, that India is an artificial union that will disintegrate soon. Churchill had predicted dissolution of India within three years from 1947, while Nixon in 1986 felt that dismemberment of India into twenty countries could be induced from outside anytime. Chinese blogs think that unraveling of India is imminent.

But India has survived all the Cassandras, and since the British 'imposed' partition of 1947, the territory of modern Republic of India has not shrunk since, even if today every inch of it is not

yet within its administrative control. If at all, the geographical span of India has marginally increased with the merger of Sikkim in 1974. In the various crises of 1962, 1977, and 1984 Indians have also dramatically demonstrated their intrinsic unity.

From a study of nations that remain united and contrasted with those which have disintegrated, it seems that the crucial element for durable national integrity is the concept of 'who we are' that the people, within a geo-political boundary, willingly accept. This concept has to be nurtured, renewed, continually enriched and given substance.

Such a concept however cannot be forced down the throats of a people as the examples of USSR and Yugoslavia demonstrate nor can one allow the concept to derail a society as it did in Hitler's Germany. At the same time the concept cannot be amorphous, meaning all things to all men.

The researches of a Harvard professor, late Dr. Samuel Huntington[1] on the concept of US as a nation and its viability, is worthy of our notice.. He argued that the US as a nation is rooted in the 'American identity' which is constituted in two dimensions: salience and substance.

Salience is the importance of one's national identity over other sub-national identities (of language, region, profession etc.), while substance is what one thinks he or she has in common with other citizens, and that which distinguishes this commonality from other peoples.

He suggests that a people with both, a definite salience and rich substance, will remain a nation, while others will not. Hence, Dr.Huntington argued, the US has remained a nation because salience over the last two and quarter centuries has been clearly defined and renewed. He thinks that the most recent renewal emerged out of the American sentiment against the terrorist atrocity on September 11, 2001 (now abbreviated the 9/11). The patriotic sentiment upsurged amongst the American people,

[1]Who Are We?: Challenges to American National Identity [Simon and Schuster, New York, 2005].

dwarfing all other sub-national identities.

American identity is also sustained by the substance rooted in 'American creed', or what in popular parlance is called the 'American way'. Paraphrasing Dr.Huntington, the 'American creed' may be identified as (i) Anglo-Protestant work ethic (such as sticking to contracts, punctuality, word as bond, honouring IOUs etc.); (ii) Christianity-religious belief in God, in good being rewarded and evil being punished by Him; (iii) English language; (iv) Rule of law and equality before it; and (v) Individualism and the pursuit of happiness. Dr.Huntington quotes a 1931 judgment of the Supreme Court in which the apex Court held that US is a Christian nation, and hence he advocates that acceptance of that is part of the American creed.

We shall therefore apply the concepts of salience and substance to Indian identity. In brief, I submit that *Salience* in the Indian Identity is constituted by the identification of Indians with the geography of India as a motherland [Bharat Mata], including the deification of her mountains, rivers, and places for pilgrimage. The DNA of every Indian affirms the validity of this identification. This identification has manifested in upsurge of patriotic sentiment during Sino-Indian Border War of 1962, the Struggle for Democracy culminating in 1977 General Elections, and in the assassinations of Mahatma Gandhi in 1948 and Prime Minister Indira Gandhi in 1984.

Substance of the Indian Identity, I suggest, is *Hindutva*, a cultural concept, that is "Hindu ness" of Indians. Gandhi had no difficulty thus to elevate *Ram Rajya* as a governance norm without causing any discord during the Freedom Struggle or in a secular state of modern India. It was Nehru and his daughter Indira Gandhi who felt that modern India should eschew such Hindu religious iconisation. For a very spiritually minded Indian given to public display of his religiousness this has caused a continuing confusion and a conceptual crisis as well.

However, to defend this Hindutva as a basis for Indian identity, it is essential to resolve an intrinsic paradox of Hindutva

arising out of the individual freedom afforded by Hindu theology. The individual-centric distinctiveness of Hinduism, makes it possible to see millions of Hindus, for example, to come to Kumbh Mela festival on their own, without a fatwa or invitation, or travel subsidy, or even any publicity about date and place of the Mela, and peacefully and without guidance or dictation, perform their pujas and then depart. It is purely voluntary even as the state does not provide any organization. This is individualism *par excellence.*

With this kind of widespread voluntary commitment of Hindus, seen not only in Kumbh Mela, but in other pilgrimage occasions such as in Sabarimalai, Vaishno Devi, etc., and the reality of our tolerant civilisational history, *can patriotic Indians feel secure that Hindus will unite with a collective mindset when it becomes necessary to defend against sinister, sophisticated, and violent threats that the religion faces - as it is today- from within and from abroad?*

We cannot be sure, because the Kumbh Mela spirit not only represents the innate voluntariness in Hinduism, *but paradoxically also its main weakness*. That is, those who assemble at Kumbh Mela in modern India do it as an act of individual piety. Hindus of today do not go to Kumbh Mela to be with other Hindus in a religious congregation, but because they believe that their individual salvation lies in going there. But the current threats to Hindu religion require a coordinated collective response for which a well defined identity consciousness is essential. *Therein lies the paradox to be resolved.*

Hindus therefore today lack the necessary modem mindset that can collectively bond the community in an inclusive virile wholesome unity based on Hindutva and assimilate modernity, which assimilation is necessary today to meet the threats that Hindu religion faces from terrorism, conversions, religious minority appeasement, and distortions in the history textbooks. Hindus can meet these threats if it is clearly perceived, elaborated by example, and are organized for meeting the existential challenge..

Patriotic Hindus thus should understand this 21st century structural limitation in the practice of the theology of Hinduism,

that is, individualism is mistakenly taken as selfish independence and modernity as Westernisation. Hindutva, it needs to be understood, is the Indian's innate nature, while Hindustan is its territorial body, and Hindu Rashtra is its republican soul. Hindu *panth* [religion] is however a theology of faith. Even if any Indian has a different faith from a Hindu, he or she can still be possessed of Hindutva.

Hence, we can say that Hindustan is a country of Hindus and those others whose ancestors were Hindus. Acceptance with pride of this reality by non-Hindus is to accept Hindutva. Hindu Rashtra is therefore a republican nation of Hindus and of those of other faiths who have Hindutva in them. *This formulation settles the question of identity of the Hindustani or Indian.*

Indians have been waffling on the question of identity now for over six decades. Time is at hand to rectify that waffle by adopting an Agenda for Action to inculcate Hindutva as the core of an Indian's identity. Its implementation requires political action. Thus, the question arises: Is modern India a spiritual state that draws values from its Hindu past or is it a modern westernized secular socialist state bequeathed as a by-product of British Imperialism, wherein the citizen must treat religion as a personal matter and not allow it to invade the socio-political dialogue ? If the former, then where do the Muslims and Christians fit in?

The failure to date, to resolve the identity crisis arising from a lack of a settled explicit and clear answer to the above question has not only confused the majority but confounded the Indian minorities as well. However, without a resolution of the crisis, which requires an answer to this question, the majority will never understand how to relate to the civilisational legacy of the nation, and *also to the minorities*.

The majority-minority question has dogged India for the last six decades and more since Independence. Paradoxically, the Hindus despite being over 80% appear to suffer from a minority complex, because Hindus of today are being confused by others on whether the Republic of India founded in 1947 is a legatee of

the ancient Hindu India, *or a new nation* altogether, forged as a by-product of British rule from a motley crowd of castes, ethnicities, and linguistic groups. This confusion is also at the core of the identity crisis which can disappear if we decide which of these two we are: a continuing Hindu civilisational entity or an administrative by-product of British Imperialism.

Minorities would in turn need to understand how to adjust with the Hindu majority and to its own sub-legacy of forced or induced conversions to Islam and Christianity, and thus whereby this identity crisis is resolved. The present dysfunctional perceptional mismatch in the understanding of who we are as a people is behind most of the communal tensions and inter-community distrust in the country. It also weakens India's integrity.

Unless Indians settle this question arising from these two conflicting concepts of identity clearly, finally, unambiguously, and authoritatively as to who we Indians are, Indians will flounder, flip-flop, and generally continue to be devoid of healthy patriotism.

We shall define the Indian nation as " a nation of Hindus and those others who proudly acknowledge that their ancestors were Hindus". The reality of Hindu ancestry has been scientifically established in the research of Ramana Gutala and Denise Carvalhosilva, titled "A Shared Y-Chromosomal Heritage between Muslims and Hindus"[1].

The Journal of Human Genetics (January, 2009) published an Indian genetic researchers' report titled: "The Indian origin of Paternal Haplogroup Riai Substantiates the Autochthonous Origins of Brahmins and the Caste System."[2]

It shows that Brahmins, Scheduled Castes and Tribals of India all show a common genetic ancestry. The age of this yet-to- be- determined common parentage goes back, in India itself, to at least 9,000 years and possibly 20,000 years, leaving no genetic support for the migration into India theories, including the Aryan-Dravidian theory concocted by the British Imperialists.

---

1. Human Genes Journal, Sept.2006, VI. 120 p.543-51.
2. http://www.nature.com/igh/search.

This report may deal a final and definite blow to the Aryan Invasion theory which was that the Indian peninsula was first ruled by Dravidians who were over-powered in 1500 B.C. by an invading horde from Caucasia entering India via the Khyber Pass, who were called the Aryans. They later became the priestly class of Brahmins, who exercised hegemony over the society relegating the Dravidians to Backward and Untouchable status.

There is no such word as 'Aryan' in Sanskrit literature (closest is 'arya' meaning honourable person, and not community) or Dravidian (Adi Sankara had in his *shastrartha* with Mandana Mishra at Varanasi, called himself as a "Dravida shishu' that is a child of where three oceans' coastline meet, i.e. Kaladi in Kerala and Kanyakumari and Kanchi in Tamil Nadu; i.e. south India).

The Aryan-Dravidian theory was deliberate distortion by British imperialists and propagated by their tutees in India. Incidentally, the Aryan-Dravidian myth has now been exploded by modern research on DNA of Indians and Europeans conducted by Professor C. Panse of Newton, Mass. USA; Dr. M.S. Patel of Houston, Texas, USA; and other scholars. Most recently(in 2007), Dr. Gyaneshwar Chaubey of the University of Tartu in Estonia; Dr. Metspalu, Dr. Toomas Kivisild of Cambridge University, U.K.; and R. Villems[1] have concluded after four years of research on 12,000 samples that all Indians "had common genetic traits irrespective of the regions of India to which they belonged." Thus they rule out the so-called AIT (Aryan Invasion Theory).

In the light of such new research, the British Broadcasting Corporation (BBC) service in its October 6, 2005 service completely debunked the Aryan-Dravidian race theory stating that: "Theory was not just wrong, it included unacceptably racist ideas"[2]. Even the trustees of British imperialist historians have begun to sing a different tune on the "Aryan invasion" theory (see my exchange in The Hindu with Dr. Romilla Thapar).

Modern India is portrayed by foreign interests through

1. "Peopling of South Asia" in BioEssays 29: 91-100 http:// onlinelibrary.wiley.com
2. www.bbc.co.uk; religion&ethics homepage, Thursday, 6/10/05.

school and college curriculum as a discontinuity in history and a new entity much as are today's Greece, Egypt or Iraq. That curriculum is largely intact today. On the contrary, efforts are afoot to bolster the disparagement of our past in the new dispensation today.

Such a "history" has been deliberately created by the British as a policy. Sir George Hamilton, Secretary of State for India, wrote on March 26, 1888 that "I think the real danger to our rule is not now but say 50 years hence .... We shall (therefore) break Indians into two sections holding widely different views.... We should so plan the educational text books that the differences between community and community are further strengthened".

A rudderless India, disconnected from her past has, as a consequence, become a fertile field for religious poachers and neo-imperialists from abroad who paint India as a mosaic of immigrants much like a crowd on a platform in a railway junction. That is, it is clandestinely propagated that India has belonged to those who forcibly occupied it and gave it an identity. Let me quote here Swami Vivekananda:

> "*There is not one word in our scriptures, not one, to prove that the Aryans ever came from anywhere outside India…. The whole of India is Aryan, nothing else"*[1].

Sri Aurobindo never tired of stressing this Indian essential unity:

> "In India," he said, "at a very early time the spiritual and cultural unity was made complete and became the very stuff of the life of all this great surge of humanity between the Himalayas and the two seas."[2]
>
> Sri Aurobindo further said:
>
> "*A time must come when the Indian mind will shake off the darkness that has fallen upon it, cease to think or hold opinions at second and third hand and reassert its right to judge and enquire in a perfect freedom*

1. Complete Works of Vivekananda:
2. Complete Works of Sri Aurobindo

into the meaning of its own Scriptures. When that day comes we shall, I think, (…..)question many established philological myths – the legend, for instance, of an Aryan invasion of India from the north, the artificial and inimical distinction of Aryan and Dravidian which an erroneous philosophy has driven like a wedge into the unity of the homogenous Indo-Afghan race."

This intrinsic Hindu unity has thus been sought during the last two centuries to be undone by legitimizing such bogus concepts as Aryan-Dravidian racial divide theory, or that India as a concept never existed till the British imperialists invented it, or that Indians have always been ruled by invaders from abroad.

After achieving independence, under the leadership of Jawaharlal Nehru and the implementing authority of the ICS, revision of our history was never done. In fact, the very idea was condemned as "obscurantist" and Hindu chauvinist.

III. COMMON LANGUAGE FOR MODERN INDIAN IDENTITY

In the centuries to come, it is Sanskrit that will be the most sensible link language for us Indians. There are two reasons for it. The first is that all Indian languages have a high proportion of words taken from Sanskrit. In the case of Bengali and Malayalam it may be 90 per cent, while in the case of Tamil it is at least 35 per cent (even in the DMK version of "pure" Tamil). Bengali is proudly referred to as the "daughter" of Sanskrit, but Tamil which has a proud history of its own, thanks to the long unbroken reign of the Chola kingdoms, is thought of as the "sister" of Sanskrit.

For this reason, Sanskritized Hindi is easier to understand for the Southerners (and more difficult for those Northerners like Nehru steeped in Urdu). The late Annadurai of DMK used to say that for Sanskritized Hindi, "na vadiyar" (I am teacher). Incidentally, the Tamil word "vadiyar" comes from the Sanskrit

word "vadi" (preacher). For this reason of common vocabulary, Sanskrit is ultimately the best national language for India.

Secondly, international research in today's most advanced area of computers, namely, Artificial Intelligence, which is to revolutionize the knowledge systems of the 21st Century, is now increasingly coming to the conclusion that Sanskrit is the best language to store knowledge in a computer.

Dr. Rick Briggs of the US National Aeronautics and Space Agency (NASA), in an article[1] titled "Knowledge Representation in Sanskrit and Artificial Intelligence" remarked:

> *"In the past twenty years, much time, effort, money has been expended on designing an unambiguous representation of natural languages to make them accessible to computer processing.*
> *Understandably, there is widespread belief that natural languages are unsuitable for the transmission of many ideas that artificial languages can render with great precision and mathematical rigour.*
> *There is at least one language, Sanskrit….(in which) can be reckoned a method …. that is identical not only in essence but in form with current work in Artificial Intelligence. This article demonstrates that a natural language (Sanskrit) can serve as an artificial language also, and that much work in Artificial Intelligence has been reinventing a wheel millenia old".*

The grammarian – Panini – is now being called the first software man, without the hardware. And the focus is on the roughly 4,000 rules of Sanskrit grammar that he evolved-rules that are so scientific and logical in manner that they closely resemble structures used by computer scientists throughout the world.

Since Sanskrit is said to be the mother of most Indian languages (and, as stated above, Tamil is considered a sister of

1. Artificial Intelligence, Spring 1985, NASA, USA

Sanskrit), scientists are trying to develop a mathematical and computational grammar for them. These are "catchy ideas" in artificial intelligence today, with pioneering work now being done in India, US and Germany. Interestingly, many scientists are tempted to speculate how Panini developed his rules in so concise and precise a manner without a computer in 3995 aphorisms in his *Ashtadhyayi*.

Thus, as we look back, it seems that the founding fathers committed a blunder in not according Sanskrit its rightful place as a component of Substance of Indian identity. In India's long history, Sanskrit has been the greatest integrating force, the source of cultural continuum, the medium of literary creativity, the voice of the sages and the language of the most sublime thoughts and the profoundest of the philosophies of life. It was the medium of intellectual and spiritual discourse and made its impact on scholars throughout the length and breadth of the country[1].

However, what came out of all that discussion in the Constituent Assembly was that Sanskrit was included in the 8th Schedule of the Constitution as one of the Indian languages (the number of these languages has now gone up to 18). Also, it was provided that Hindi, which was to be the official language, would be developed by drawing wherever necessary for its vocabulary primarily on Sanskrit. This was hardly a fair deal to Sanskrit.

Nehru himself continued to pretend reverence for Sanskrit. While speaking in Parliament on a Private Member's Bill in 1959, Nehru *inter alia* said that people grew from their roots. India had a history of 5,000 to 10,000 years. Language was a symbol of continuity. The language to which most Indian languages were connected was Sanskrit. But it was lip service. In reality, Nehru sabotaged the cause of Sanskrit.

In fact, Sanskrit made a significant contribution to the development of all the Indian languages. With the exception of four languages of the South, almost all the major Indian languages

[1] see Subhash Kashyap "Back to Sanskrit" (*The Hindu,* Jan. 11, 2000 p.21)

had their source in, and derived their sustenance from, Sanskrit. The languages of the South also had a large part of their vocabulary derived from Sanskrit.

Anti-Hindi zealots confuse Devanagiri with Hindi. The truth is that Hindi is just one of the languages using this script. Sanskrit, Marathi, Sindhi and some of the hill tract languages also use Devanagiri. This script thus can be used by any language. In fact, the scripts of all Indian languages including even Tamil and *Devanagiri* [considered as "sisters"] are direct descendants of the original *Brahmi* script. Any competent linguist would tell you that[1].

The *Gurumukhi* script is very similar to the *Devanagiri* script, just as the Gujarati script is. Anyone who knows *Devanagiri* can master Gurumukhi in 24 hours. Yet a senseless agitation took place, followed by an unhealthy polarization process that culminated in Operation Bluestar in 1984, the tragic after-effects of which we feel even today.

In a calm dispassionate atmosphere which may take decades to attain, young people, especially those entering primary and secondary schools, should be made to learn at least two languages and two scripts: (1) mother tongue and Sanskrit and (2) own script and Devanagiri. In the meantime, Hindi should continue to Sanskritize itself to the point where it becomes almost indistinguishable from Sanskrit. It will then merge into Sanskrit, disappearing except in local dialects.

Long ago, Sanskrit was once uprooted from India by Pali. But after some centuries, this versatile language was rethroned by the same process via *Mahayana* Buddhism and sanskritising the vocabulary of Pali. A second rethroning of Sanskrit can now be achieved through sanskritising Hindi. Till that day, through the three languages formula, which requires northerners to learn one southern language, if sincerely implemented, we can make a steady progress towards the goal of re-throning Sanskrit once again as the national language of India.

---

[1] Mahadevan: Corpus of the Tamil-Brahmi script Chennai, India

IV. CONCLUSIONS

I define therefore a continuing Indian Identity as of one who is a Hindu or one who acknowledges that his ancestors are Hindus. This concept would include willing Muslims, Christians, Parsis and Jews. Thus, religion of any Indian can change, but *not* the continuing Hindu civilizational culture. Hinduness of Hindutva provides the foundation or the defining characteristic of an Indian.

The world knew India in these past two millenniums, not as nomads, but as a highly civilized people who produced exotic goods the world had never seen before and who were hospitable to visitors from abroad. Many travelers such as Fa Hsien, Yuan Chuang, Marco Polo, Vasco d'Gama, and Mark Twain wrote glowingly about the behaviourial quality of the Hindus, which can be summarized as the Hindu-ness [i.e., *Hindutva*] of the Indian people. For example:

"India was the cradle of the Human race, birth place of human speech, mother of history, grandmother of legend, great grandmother of traditions; the one land all men desire to see, and having once seen by even a glimpse, would not give that glimpse for all the shows of all the rest of globe combined." - **Mark Twain (1806).**

.....

"Whenever I have read any part of the Vedas, I have felt that some unearthly unknown light illuminated me. In the great teaching of the Vedas, there is no touch of the sectarianism. It is of ages, climes, and nationalities and is the royal road for the attainment of Great Knowledge. When I am at it, I feel that I am under the sprangled heavens of a summer night". - **Henry David Thoreau (Eminent author & Philosopher).**

.....

"India conquered and dominated China culturally for twenty centuries without having to send a single soldier across her border. This cultural quest was never imposed by India on

her neighbours. It was the result of voluntary searching, voluntary learning, voluntary pilgrimage and voluntary acceptance on the part of China" **-Dr.Hu Shih, Ambassador of China to USA (1939-42) and President, Peking University (1936-39) in his Address to Harvard University at the Tri-Centennial Celebrations, 1936.**

Swami Vivekananda defined Hindutva, upon returning from Chicago in 1896 in an address in Lahore as follows:

> "Mark me, then and then alone you are a Hindu when the very name Hindu sends through you a galvanic shock of strength. Then and then alone you are a Hindu when every man and woman who bears the name Hindu, from any country, speaking our language or any other language, becomes at once the nearest and dearest to you. Then and then alone you are a Hindu when the distress of anyone bearing the name Hindu comes to your heart and makes you feel as if your own son or daughter were in distress" [*Collected Works,* vol 3, page 379].

Paraphrasing what Veer Savarkar had said, the following is what he said enlightened Hindus need to tell India's minorities and others:

"If you come along with us, *then with you.* If you do not, *then without you.*

If you oppose us, *then inspite of you.* Hindutva shall prevail"[1]**.**

And Deendayal Upadhyaya[2] outlined how to modernize the concepts of Hindutva as follows:

> "We have to discard the *status quo* mentality and usher in a new era. Indeed our efforts at reconstruction need not be clouded by prejudice or disregard for all that is inherited from our past. On the other hand, there is no need to cling to past institutions and traditions which have outlived their

[1] *Hindutva* :Bharati Sahitya Sadan, Delhi, 1989.

[2] *Integral Humanism.* www.deendayalupadhyaya.org/books.h

utility". *This is the essence of renaissance.*

Thus, we should invite Muslims and Christians to join us Hindus on the basis of common ancestry or even their return if they wish to our fold as Hindus, in this grand endeavour as Hindustanis, on the *substance* of our shared and common ancestry. It is a huge myth to hold that there never was an India and therefore an Indian till the British Imperialist put it together in their administrative interests.

This is the goal: to chart a road map for India that is Hindustan to become a Hindu Rashtra based on Hindutva. This requires a liberated modern mindset informed by Hindutva.

Thus, five dimensions of modern India's continuing Identity are:

1. Hindutva is the foundation of India's Identity, termed as Asmita which is Hindustan;
2. Sanskrit is the basis of Indian oral and written interregional communication;
3. The true de-falsified History of India;
4. Ram Rajya is our Governance creed; and
5. Integral Humanism is our economic philosophy

There are eight components of such a Hindutva— induced mindset that the nation needs today:

First, India's Hindus and others must regard and foster the concept of the nation as the unbroken civilization of Hindustan; and their common history of endeavours, struggles, defeats and victories. Ancient Hindus and their descendents have always lived in this area from the Himalayas to the Indian Ocean, asetu Himalayan, an area called Akhand Hindustan, and did not come from outside.

Second, Hindutva requires that national policies for development should synchronize and harmonize material goals with spiritual advancement, which is Deendayal Upodhyaya's Integral Humanism philosophy.

Third, Modern India is a Spiritual State that adopts the

concept: *sarva pantha sama bhaava*. Hence the declaration in the Preamble of the Constitution that India is a Secular State should be replaced by that of a Spiritual State.

Fourth, a national law requiring prohibition of induced and collective religious conversion. Such a law will however not bar re-conversion to Hindu religion, or the return of any Indian to his or her ancestor's faith.

Fifth, that there is no theologically sanctioned concept of birth based social hierarchy. Varna never was conceived as birth-based in Hindu scriptures, but a choice that was subject to each abiding by the prescribed disciplines of that Varna. The present practice of birth-determined Varna is un-Hindu, and is excess baggage to be off-loaded and purged from the body-politic of the nation in the interest of a *virat* Hindu unity.

Sixth, all Hindus to qualify as true Hindus must make effort to learn Sanskrit and the Devanagari script, in addition to mother tongue, and pledge that one day in the future, Sanskrit will evolve to become India's link language since all the main Indian languages already have a large percentage of their vocabulary derived from or in common with Sanskrit. To re-throne Sanskrit, Hindi should keep its vocabulary Sanskritising till Hindi itself becomes indistinguishable from Sanskrit, just as Pali became two thousand years ago.

Seventh, Hindus must prefer to lose everything they possess rather than submit to tyranny or to terrorism.

Eighth, the Hindutva art of governance would be structured on the principles of Ramrajya and the tenets Arthsastra of Chanakya. The Hindu must have a mindset to retaliate when attacked. The retaliation must be massive enough to deter future attacks.

These eight attributes constitute a mindset that a modern Hindu must have in order to be in a position to confront the challenge that Hindu civilization is facing from Islamic terrorists and from fraud foreign Christian missionaries, who unfortunately are also aided and abetted from within the country by confused Hindus.

Without such a virile mindset which is virat Hindutva, Hindus will be unable to confront the subversion and erosion that today undermine the Hindu foundation of India. This foundation is what makes India distinctive, and hence we must safeguard it with all the might and moral fibre that we have. National renaissance flows out from that.

*****

भारतीय अस्मिता की निरन्तरता के अध्यात्मिक अधिष्ठान

स्वामी संवित सोमगिरी जी[1]

आज के इस अत्यन्त ही महनीय, मंगलमय, पावन, प्रेरणास्पद अवसर पर मैं माँ भारती के चरणों में कोटिशः वंदन करता हूँ। युगों-युगों से प्रवाहित यह भारतीय संस्कृति मन्वन्तरों व कल्पों को पार करके जब कोई नाम-रूप भी नहीं था तब भी भारतीय संस्कृति बीज-रूप में उपस्थित थी। यह सत्-मूलक, चित्त-मूलक, आनन्द-मूलक, चैतन्य-मूलक और वेद-मूलक संस्कृति है। यह संस्कृति विश्व का तारण करने वाली संस्कृति है। इस चिन्मय संस्कृति जिसकी पावन गोद में यमुना का प्रसिद्ध क्षेत्र इसमें जो चेतना विलसित हो रही है मैं उसके प्रति शत-शत वंदन करता हूँ और इसी भारत की राजधानी दिल्ली ज्ञान का यह क्षेत्र जहाँ गुरु-शिष्य साधना करते हैं, जहाँ चित्ति शक्ति विलसित हो रही है उस पावन चेतना को बारम्बार वंदन करता हूँ। उसी में यह सभागार जिस भावना को लेकर, जिस संकल्पना को लेकर उमड़-घुमड़ रहा है उस उमड़न के प्रति बारम्बार वंदन करता हूँ।

मैं वंदन करता हूँ जिसका पावन सान्निध्य पूरे भारत को युगों-युगों से अनुप्राणित कर रहा है। प्रथमज हिरण्यगर्भ ब्रह्मा के मानस पुत्र वशिष्ठ व उनकी शक्ति अरुन्धती उसका यह अनुसंधान पीठ उस शक्ति के प्रति, उस गुरु शक्ति के प्रति, उस प्रज्ञा पुरुष के प्रति मैं कोटिशः वंदन करता हूँ। मंच पर विराजित

---

[1]भारतीय अध्यात्म दर्शन के प्रकांड विद्वान् एवं मठ अधिष्ठाता लालेश्वर महादेव मंदिर शिवबाड़ी, बीकानेर।

ये महापुरुष जो चिंतित हैं इनके हृदय में जो भाव था, जो संकल्पना थी, जो दिशा थी उसके प्रति मैं वंदना करता हूँ और मंच पर विराजित अनेक ताड़कासुरों का वध करने के लिए तत्पर कुमार स्वामी और उनके अन्दर जो शक्ति अपने आप को प्रकट कर रही है उसका अभिनन्दन करता हूँ। मंच पर विराजमान सभी विद्वानों एवं मनीषियों के प्रति एवं मेरे सामने समपुस्थित विद्वतजनों के प्रति, मातृ शक्ति के प्रति तरुणाई के प्रति मैं कोटिशः वंदन करता हूँ।

वशिष्ठ जी के हृदय में जो व्यथा थी और उस व्यथा का अनुभव किया इस अनुसंधान पीठ ने और उन्होंने प्रश्न उठाया कि भारतीय अस्मिता क्या है? आज का विषय रखा ''भारतीय अस्मिता की निरन्तरता'' मैं क्षमा चाहता हूँ यदि इस विषय को थोड़ा परिवर्तित कर दूँ - ''भारतीय अस्मिता की नित्यता'' केवल यही विषय रखूँ तो कैसा रहेगा? ''भारतीय अस्मिता की नित्यता'' पुनः इसको परिवर्तित कर दूँ ''भारतीय अस्मिता की नित्य-निरन्तरता''। भारतीय संस्कृति की नित्यता भारतीय संस्कृति का हार्द है, हमें उस आत्मा को पहचानना होगा। इसका एक परमार्थिक दर्शन है और उसको बताने वाला वेद है। अथातो ब्रह्म जिज्ञासा ब्रह्मसूत्र में भगवान वेद व्यास इस बात को उठाते हैं अर्थात ब्रह्म जिज्ञासा, जन्माद्यस्य यतः, शास्त्र-योनित्वात्, वह ब्रह्म कौन है, कहाँ है, और वह ब्रह्म कैसा है? उत्तर देते हैं- ''जन्माद्यस्य यतः।'' सृष्टि, स्थित, लय, निग्रह, अनुग्रह आदि पंच कृत्य करने वाला तत्व है। क्या प्रमाण है? 'शास्त्र-योनित्वात्' मैं इस मंच से बता देना चाहता हूँ कि यदि संस्कृति का अभ्युदय एवं निःश्रेयस होगा, यदि मानवता का अभ्युदय एवं निःश्रेयस होगा तो केवल श्रुति को लेकर होगा। वेद तो काल से परे हैं, वेद ईश्वर का विवर्त है, वेद सनातन है, अपौरुषेय है। अगर हमने यह मान लिया कि वेद मनुष्यकृत रचना है तो यहीं पर हमारी त्रुटि हो गई। इसलिए भारतीय संस्कृति को समझना हो, उसके मूल को समझना हो तो वेद विषयक अवधारणा स्पष्ट होनी चाहिए।

'The world is more of a thought than a thing'. यह thingness प्रतीति मात्र है। नासा के वैज्ञानिक बता रहे हैं कि सूर्य की रश्मियों में वेद के मंत्र गूँज रहे हैं। जहाँ करोड़ों-करोड़ों हाईड्रोजन बम जैसी ज्वालाएँ हैं और सूर्य के अन्दर निरन्तर कोई ध्वनि गूँज रही है, जो श्रवणीय (audible) नहीं है मनुष्य

इसको सुन नहीं सकता। वैज्ञानिकों ने इसको घनीभूत (condense) किया और बताया कि इसमें ओंकार नाद प्रकट हो रहा है। हम तो सूर्य को वेदात्मा कहते ही हैं। सूर्य केवल आग का गोला नहीं है, इसमें वेद की ऋचायें झंकृत हो रही हैं। इसकी रश्मियों में सामवेद की ऋचायें हैं, उसके केन्द्र और परिमण्डल में ऋग्वेद की ऋचायें हैं। ऋग्वेद, सामवेद एवं यजुर्वेद-वेदत्रयी इसमें तप रही हैं, इसमें से प्रकट हो रही हैं, इसलिए बन्धुओं इस प्रथम अवधारणा को हमें समझना होगा। वेद के विषय में हमारी अवधारणा ठीक होनी चाहिए।

हम जब भारतीय संस्कृति की बात करते हैं, उसको कुछ काल खण्डों तक सीमित नहीं करना। हम तो चहल-कदमी करने वाले हैं युगों, कल्पों, मनवन्तरों में। हम क्षण-क्षण की प्यालियों में शताब्दियों को, सहस्राब्दियों को, युगों को, कल्पों को घूंट-घूंट कर पीने वाले लोग हैं। प्रतिदिन जब हम संकल्प करते हैं तो कुलाचें भरते हुए काल से पार उड़ते हुए जाते हैं। ''ॐ विष्णुर्-विष्णुर् विष्णुः श्रीमद-भगवतो महापुरुषस्य विष्णु-राज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणः द्वितीय परार्द्धे श्वेत-वाराह-कल्पे-वैवस्त-मन्वन्तरे अष्टा-विंशतितमे कलियुगे कलि-प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे-क्षेत्रे-नगरे, नाम संवत्सरे, -'' हम पार करके जाना चाहते हैं, इसलिए हमारी अस्मिता की पहचान है- अहम ब्रह्मास्मि, अहम ब्रह्मास्मि, अहम ब्रह्मास्मि। हमारे जीन्स को यदि डीकोड करो तो यह ऋचा गूँजेगी अहं ब्रह्मास्मि, सोहं अस्मि, सोहं अस्मि। इसलिए अनन्त के पथ से चलता हुआ कोई हमारे आंगन में आता है और हम उसके कान में कहते हैं ''वेदोसि, वेदोसि'' तू वेद स्वरूप है, तू ज्ञान स्वरूप है, तू चैतन्य स्वरूप है। हम उसकी जीभ पर सोने की शलाका से ओंकार लिखते हैं, इसलिए हमारा पारमार्थिक दर्शन बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिए। हमारे पारमार्थिक दर्शन में जरा भी घालमेल नहीं है, उसमें जरा भी भ्रांति नहीं है।

श्रुति, युक्ति और अनुभूति को लेकर हमारी संस्कृति चलती है। केवल श्रुति को अपना लिया तो त्रुटि हो जायेगी। केवल युक्ति को अपना लिया तो त्रुटि हो जायेगी। केवल अनुभूति को अपना लिया तो कोई पंथ बन जायेगा।

श्रुति, युक्ति और अनुभूति को लेकर हमारी संस्कृति अनादि काल से प्रवाहित होती चली आ रही है, होती रहेगी। सनातन संस्कृति सारे विश्व में फैली

हुई थी। साईबेरिया की गुफाओं में भी वेद के मंत्र अंकित एवं उत्कीर्ण हुए थे, लोगों ने उनके दर्शन किए। संस्कृति का प्रारंभ ही हमारे यहाँ हुआ था। धरती का कौन सा कोना है जहाँ भारतीय संस्कृति प्रवाहित नहीं हुयी थी और यह कहना कि बन्दर की पूँछ घिस गई और आदमी बन गया पूर्णतः भ्रांत दर्शन था और दुर्भाग्य से अभी भी विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में यही पढ़ाया जा रहा है।

मानसिक सृष्टि पहले हुयी थी।

महर्षयः सप्त पूर्वे, चत्वारो मनवः-तथा।
मद-भावा मानसा जाता, येषां लोक इमाः प्रजा।।[1]

सारी की सारी सृष्टि फैली हुयी थी, मैथुनी सृष्टि बाद में हुई थी। हम अपनी अवधारणाओं को ठीक करें। The material cause and the efficient cause अर्थात् जगत का अभिन्न निमित्त-उपादान कारण वह एक ब्रह्म ही है। वह देश, काल, वस्तु, परिच्छेद से रहित है। वह सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद से रहित है ''प्रपंचापशमं शान्तं विश्वमद्वैतं चतुर्थ मन्यते स आत्मा स विज्ञेयः''।[2] अर्थात् जो त्रिगुणों से रहित है, शान्त है, शिव है, अद्वैत है, जिसे तुरीय (चौथापाद) कहते हैं, वही आत्मा है, उसका साक्षात्कार करना चाहिए। This is the highest motivation. इसलिए हमें यदि उठना होगा तो अपने दर्शन को ठीक करना होगा। जगत का दर्शन, ईश्वर का दर्शन एवं वेद के दर्शन को समझना होगा।

हमारा व्यवहारिक दर्शन तब तक ठीक नहीं होगा जब तक हम अपनी प्रत्येक अभिव्यक्ति के आधार में पारमार्थिक दर्शन को नहीं रखेंगे। उस परब्रह्म ने लीलामय होकर अपनी स्वेच्छा से परम् स्वतंत्र होकर सृष्टि की रचना की और उसमें प्रकट होकर अपनी अनिर्वचनीय माया शक्ति का प्रयोग करके अपने आप को जीव, जगत व ईश्वर के रूप में प्रक्षिप्त किया। अपने आप को प्रकट किया, विवर्तित किया। क्या ईश्वर विषयक हमारी अवधारणायें ठीक हैं? ईश्वर अर्थात् न्याय करने वाला, कर्म का फल देने वाला। क्या हमारी न्यायपालिका ईश्वर के नियमों के अनुसार चल रही है? क्या हमारी कार्यपालिका, विधायिका और हमारा

1. गीता : 10/6
2. माण्डूक्य उपनिषद् - 7

मीडिया, हमारा प्रजातंत्र वैश्विक प्रतिरूप (pattern) के अनुसार चल रहा है? अगर नहीं चल रहा है और इससे भिन्न है तो हमारा समाज टूटता व बिखरता चला जायेगा। इसलिए हमें ईश्वर विषयक अपनी अवधारणा को समझना होगा।

वेद में ऋत शब्द का प्रयोग किया गया है और आपको मालूम होना चाहिए यह ऋत शब्द रिद्म बन गया। जैसे मातृ मदर बन गया, पितृ फादर बन गया, भ्रात ब्रदर बन गया। ऐसे हजारों-हजारों शब्द लैटिन में, फ्रेंच में और हमारी भिन्न-भिन्न प्रान्तीय भाषाओं में रूपान्तरित हो कर प्रयोग में आते हैं। इसी तरह ऋतम् शब्द रिद्म हो गया, सारा ब्रह्माण्ड एक रिद्म में नाच रहा है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, चिंतन और भावना micro or macro सब कुछ एक रिद्म में नाच रहा है। सागर उछलता है तो एक रिद्म में, लहर उठती है तो एक रिद्म में, रश्मियों की अंगुली थाम कर ऊपर वाष्प बनती है तो एक रिद्म में, लहर ऊपर उठती है और बादल बनते हैं तो एक रिद्म में, बारिश की बूँदें बरसती हैं तो एक रिद्म में, दामनी दमकती है तो एक रिद्म में, नदियाँ बहती हैं एक रिद्म में, लहरें प्रकट होती हैं एक रिद्म में, झरने झरते हैं एक रिद्म में, पत्ते झड़ते हैं एक रिद्म में, फूल खिलते हैं एक रिद्म में, शेर हिरण की तरफ झपटता है एक रिद्म में, हिरण कुलाचे भरकर भागता है एक रिद्म में, भँवरे गुनगुनाते हैं एक रिद्म में, तितलियाँ उड़ती हैं तो एक रिद्म में, भूकम्प आते हैं तो एक रिद्म में, ज्वालामुखी फूटते हैं तो एक रिद्म में।

सारा जगत एक रिद्म में नाच रहा है। यह शिव का नर्तन है। (Dance of the Lord Shiva) फिट ज्योफ केप्रा जिन्होंने Toe of Physics पुस्तक लिखी थी, इसका अनुभव किया था। सब कुछ रिद्म के अन्दर है, एक आनन्द का उछलन है, क्योंकि जगत का material and efficient cause एक आनन्द तत्व ही है। ''आनन्दाध्येव खलु इमानि भूतानि जायन्ते''[1] अर्थात् आनन्द से प्रकट, आनन्द में रहते हुए, आनन्द में लीन हो जाते हैं। सब कुछ रिद्म में है मनुष्य के अलावा। मनुष्य out of rhythm है। मनुष्य रिद्म में कैसे आये, मनुष्य जीवन को कैसे जिये, ये सब बतलाने वाला शास्त्र है।

---

1. तैतिरीय उपनिषद् 3.6

क्या आप इस बात को लेकर रोमांचित होते हैं कि हमें मनुष्य का दुर्लभ, अमूल्य, अद्‌भुत जन्म मिला है और वह भी भारत में हिन्दू धर्म में? भारत में भी कई प्रकार के मजहब हैं, वेद को नकारने वाले, ईश्वर को नकारने वाले, कई सांख्यवादी, अनिश्वरवादी जगत को जड़ मानने वाले भी हैं। हम जिस भारतीय संस्कृति की आत्मा की बात करते हैं उस आत्मा की ब्रह्मरूपता का साक्षात्कार इसी जन्म में संभव है। हमें यह दुर्लभ मनुष्य का जन्म मिला और इसी जन्म में हमें काल को जीत लेना है, मृत्यु को जीत लेना है। अपनी ब्रह्मरूपता का साक्षात्कार कर लेना है। क्या आपको मालूम है कि भारतीय दम्पति वैसा ही गर्भाधान करते हैं जैसा ईश्वर ने अपनी शक्ति में गर्भाधान किया था?

मम योनिर् - महद् ब्रह्म, तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम।
सम्भवः सर्व-भूतानां, ततो भवति भारत।।[1]

हम जब अस्मिता की बात करते हैं तो गर्भाधान से लेकर अन्तेष्टि तक निरन्तर ब्रह्म की तरफ उन्मुख रहते हैं, निरन्तर विकसित (evolve) होते रहते हैं। हमारी अस्मिता वहाँ तक छिपी हुयी है। हम जीवन को विभाजित नहीं करते हैं। हम धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों को लेकर, चारों आश्रमों को लेकर, चारों वर्णों को लेकर व्यक्ति, समाज व राष्ट्र को लेकर साधना करते हैं। हमारे यहाँ घरों में चिड़ियाँ उड़ती है तो 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को लेकर। हमारी भारतीय अस्मिता सारी वसुधा को लेकर अपनी बाँहों में लपेट लेना चाहती है। भारतीय अस्मिता की एक नित्य-निरन्तरता है। यह नित्यबद्ध है और निरन्तर अपने आपको प्रकट करती जाती है इसका हमको स्मरण कर लेना चाहिए। इसलिए बन्धुओं! क्या हमारी दृष्टि प्रकृति के प्रति, परा प्रकृति के प्रति, अपरा प्रकृति के प्रति, पुनर्जन्म एवं पूर्वजन्म के प्रति ठीक है? नव-विवाहिता के प्रति, विधवा के प्रति, बालक के प्रति, वृद्ध के प्रति ठीक है? क्या हमारी दृष्टि भारतीय आस्था के अनुसार है? हम किस जीवन-दर्शन को लेकर जी रहे हैं? क्या हमारी दृष्टि उस ऋत के अनुसार है जिसको लेकर हम जी रहे हैं?

इसलिए बन्धुओं जब हम विकास की बात करते हैं तो क्या यह विकास

---

1. गीता : 14/3

भारतीय संस्कृति की आत्मा के अनुसार है? क्या यह विकास वैश्विक नियमों के आधार पर हो रहा है?

Infinite number of eco system all inter connected, inter dependent, inter related. Electron, Proton, Neutron, Higs boson सभी एक नियम में आबद्ध हैं। इसलिए आप जब quantum physics and quantum relativity की बात करते हैं तो हमारा दर्शन स्पष्ट होना चाहिए। हमें समझना होगा कि हमारा विकास उस वैश्विक यज्ञ-चक्र के आधार पर हो रहा है या हम उसकी उपेक्षा कर विकास के नाम पर धीरे-धीरे विनाश की ओर बढ़ रहे हैं। भगवान श्रीकृष्ण भी गीता में कहते हैं-

एवं प्रवर्तितं चक्रं, नानुवर्तयतीह यः।
आघायुरिन्द्रियारामो, मोघं पार्थ स जीवति।।[1]

इसलिए यदि हम अपने आप को, अपने परिवार को, अपने शिक्षा-तंत्र को सुधारना चाहते हैं तो सर्वप्रथम हमारी जीव, जगत, ईश्वर संबंधी सारी अवधारणायें स्पष्ट होनी चाहिए। धर्म, मोक्ष, प्रेम, जन्म आदि के विषय में भी अवधारणायें स्पष्ट होनी जरूरी हैं।

Observe the she–ness with controlled and cultured mind. Observe the she–ness in every form of the life in a cat, in a rat, in a bat, in a fish, in a bird, in a snake, in a human being. Observe with controlled and cultured mind when it is infant, when it is grow, it is meeting, it is mating, when issuing for, when sulking a child. Project it in the cosmic screen and go beyond the big-bang and you will be screen and go primodial triangle of the creation. तब आपको पता चलेगा कि संस्कृति में मनु महराज कहते हैं कि-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।[2]

यह हमारा वैशिष्ट्य है, हमारा व्यवहारिक दर्शन है, पारमार्थिक दर्शन है और दर्शन आधार होता है मनुष्य के अभ्युदय और निःश्रेयस का। मातृ-शक्ति

1. गीता : 3/16
2. मनुस्मृति : 3/56

को यह समझना चाहिए कि उनकी महिमा क्या है, उनकी गरिमा क्या है। हमको यह दुर्लभ मनुष्य का जन्म भारत में मिला और उसमें भी She-ness के रूप में मिला -

Project she-ness on the cosmic screen go beyond the Big Bang then you will be know what is the Ishwar Tatva. Project yourself on the cosmic screen go beyond the Big Bang then you will be know what is the Yagya Tatva. Self–touching the self is existence, self –knowing the self is consciousness and self – being the self is uncountained bliss. और यही हमारी आत्मा है, यही हमारी संस्कृति का आधार है, हमारा सच्चा स्वरूप है। इसलिए हम अस्मि, अस्मि कहते हुए उस विराट की ओर बढ़ने वाले लोग हैं। इसको हमें समझना पड़ेगा अपनी शिक्षा के क्षेत्र में भी।

बन्धुओं 'ब्रह्म विद्या सर्व विद्या प्रतिष्ठा', whether you accept it or not इसलिए 'सा विद्या या विमुक्तये' - ''या विद्या-सा विमुक्तये'' - जो विद्या है वह हमको मुक्ति देने के लिए हैं, इसलिए एक जुलाहा कपड़ा बुनते हुए कहता है कि-

राम मरे तो मैं मरू और नहीं तो मरे बलाय,
अविनाशी की गोद में, कोई मरे न मारयों जाय।

यह कैसा अद्‌भुत दर्शन है जिसमें कपड़ा बुनने वाला, जूता गाँठने वाला, हल चलाने वाला सब उस परम तत्व को प्राप्त कर सकते हैं यदि दृष्टि ठीक हो तो। ब्रह्म सर्व विद्या प्रतिष्ठा। Whether you accept it or not. जैसे विश्व में इतने सारे देश हैं परन्तु उनको धारण करने वाली एक धरती माता है। यह मात्र मिट्टी या पानी का गोला नहीं है Our biosphere is a single living organism. आज के वैज्ञानिक इस बात को बता रहे हैं कि एक ही विराट चेतना है, Life is one and undivided. हम सब प्रतिदिन ईश्वर से प्रार्थना करते हुए यह प्रतिज्ञा करते हैं कि-

त्रैलोक्य-चेतना-मयादिदवे श्रीनाथ शाम्भो भवदाज्ञयैव।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थ संसार यात्रामनुवर्तयिष्ये।।

सारा ब्रह्माण्ड एक ही यज्ञ-चक्र में चल रहा है। मैं इनका अनुवर्तन करूँगा। हम

प्रतिदिन धरती पर पैर रखने से पूर्व प्रार्थना करते हैं-

समुद्रवसने देवि पर्वत-स्तन-मण्डिते।
विष्णु पत्नि नमस्तुभ्यं पाद-स्पर्श-क्षमस्व मे।

हम प्रतिदिन हथेलियों को देखकर भावना करते हैं कि-

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्म प्रभाते करदर्शनम् ।।

जीव भाव मिथ्या है यह प्रतिबिंब की तरह है। इसलिए भगवान रामजी ने अपने प्रिय भक्त हनुमान से पूछा तुम मेरे बारे में क्या सोचते हो? हनुमान जी तो ज्ञानियों में अग्रगण्य हैं। उन्होंने तुरन्त कहा 'देह दृष्ट्या तु दासोऽहं' देह की दृष्टि से मैं आपका दास हूँ 'जीव-दृष्ट्या त्वदंशकः' जीव की दृष्टि से मैं आपका अंश हूँ आपका प्रतिबिम्ब हूँ 'आत्म-दृष्ट्या त्वमेवाहं' और हे प्रभु आत्मा की दृष्टि से आपमें और मुझमें कोई अन्तर नहीं है, 'इति में निश्चिता मति' यह मेरा निश्चित मत है। यह पूरा का पूरा जीवन का सार हनुमान जी ने अपने मुख से बता दिया। हमें समवेत रूप से उस विराट तत्व को जो हमें बुला रहा है, अपनाने का प्रयास करना होगा। सर्वप्रथम हमारा उद्देश्य है कि दर्शन को ठीक करना। धर्म विषयक अवधारणा को स्पष्ट करना। धर्म की क्या अजीबों-गरीब परिभाषा हमने बना रखी है। हम धर्म की परिभाषा को ठीक से समझें, हमारी अवधारणा धर्म की-मनुष्य के संदर्भ में, स्त्री के संदर्भ में, ब्रह्म के संदर्भ में, गृहस्थी के संदर्भ में, वानप्रस्थी के संदर्भ में और सन्यासी के संदर्भ में ठीक होनी चाहिए।

क्या आपके अन्दर आग लग गई है, क्या आपने जीवन को जी लिया है, क्या आपके अन्दर विविक्षा उत्पन्न हो गयी है? अगर आपने सही ढंग से भारतीय संस्कृति को अपनाया है, पूरे हिन्दुत्व को अपनाया है, सही ढंग से आपने यदि ब्रह्मचर्य जीवन को जिया है, गृहस्थ धर्म को निभाया है तो निभाते-निभाते आपके अन्दर एक विविक्षा उत्पन्न हो जायेगी एक तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हो जायेगी कि मैं कौन हूँ, मैं कहाँ से आया हूँ और मुझे कहाँ जाना है? हमारे अन्दर अभी वह ज्वाला प्रकट नहीं हुयी है, क्योंकि हमने सही ढंग से भारतीय संस्कृति को अपने जीवन में उतारा नहीं है। यदि हम भारतीय संस्कृति के सही रूप को अपने जीवन में उतारते चले जायें और सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम को सँवारते जायें तो

ब्रह्म-विद्या हमें निश्चित रूप से आनन्द में ले जायेगी, पूर्णता की ओर ले जायेगी और यह अवागमन समाप्त हो जायेगा, यह अलग से कोई जीवन नहीं है। क्या आपको यह मालूम है कि जब अर्जुन ने भगवान कृष्ण से पूछा था कि आप बात तो ज्ञानियों की कर रहे हैं, उनकी महिमा को गा रहे हैं और मुझे घोर कर्म की ओर प्रेरित कर रहे हैं, मुझे आप कह रहे हैं युद्ध कर, लेकिन दोनों में श्रेष्ठ क्या है, घर छोड़कर ईश्वर को प्राप्त करना या घर में रहकर सारे कर्तव्यों को निभाते हुए ईश्वर को पाने की साधना करना? भगवान कहते हैं कि ये दोनों ही ठीक है, परन्तु ईश्वर की उपासना करना ज्यादा सरल है।

सन्यासः कर्मयोगश्च, निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसन्यासात्, कर्मयोगो विशिष्यते।।[1]

क्या आज हमारा गृहस्थ गर्भपात और भ्रूण हत्या द्वारा कलुषित नहीं हो रहा है? क्या हमारा गृहस्थ दहेज के द्वारा कलुषित नहीं हो रहा है? क्या छुआ-छूत एवं दलितों के प्रति अन्याय द्वारा हमारा समाज विकृत नहीं हो रहा है? क्या हमारा समाज कुरीतियों के कारण टुकड़े-टुकड़े नहीं हो रहा है? हमारी दृष्टि ठीक होनी चाहिए अर्थात् हर चीज के बारे में अवधारणायें स्पष्ट होनी चाहिए- जीवन क्या है, जीवन का लक्ष्य क्या है, मृत्यु क्या है, जन्म क्या है, बंधन क्या है, मुक्ति क्या है, आनन्द क्या है, सुख क्या है, शान्ति क्या है, सौन्दर्य क्या है, जीवन का परम तात्पर्य क्या है?

क्या मैं आपसे पूछ सकता हूँ Are you fulfilled? मैं जब इंजीनियरिंग कॉलेज में था तब हमारे बहुत सदाचारी शिक्षक थे और भाल पर निःसंकोच लम्बा तिलक लगाकर कॉलेज में आते थे। रोवर स्काउटिंग के कारण मेरी उनसे बहुत अधिक घनिष्ठता हो गई थी। एक दिन मैंने उनसे पूछा Are you fulfilled, क्या आप कृतकृत्य हैं? उन्होंने तुरन्त कहा 'No' मैं अभी कृतकृत्य नहीं हुआ हूँ। इसलिए बन्धुओं हमको अपने ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक बोध का स्मरण रखना होगा।

मकर संक्रान्ति का पवित्र दिन था जब पूरी भारतीय चेतना नरेन के रूप

---

1. गीता : 5/2

में पूंजीभूत, घनीभूत हो गयी थी। वे बहुत प्रश्नाकुल रहते थे। उन्होंने पूछा कौन भगवान, कैसा भगवान, कहाँ है भगवान, क्या कर रहा है भगवान, दुःख क्या होता है, मृत्यु क्या होती है, दरिद्रता क्या होती है? मैं उसके विस्तार में नहीं जाऊँगा। हम केवल बातें करते रहते हैं शास्त्र को अपने आचरण में नहीं लाते।

व्यक्तिशः, परिवारशः आप केन्द्र की सत्ता को नहीं बदल सकते, राज्य की सत्ता को नहीं बदल सकते, परन्तु अपने घर-परिवार को तो बदल सकते हैं और उसमें भी स्वयं को तो बदल ही सकते हैं। क्या आप अपने घर के अन्दर उस यज्ञ-चक्र को प्रकट कर सकते हैं जो सृष्टि में सर्वत्र प्रकट हो रहा है? यह करना चाहिए, परन्तु यह तब होगा जब आपकी दृष्टि ठीक होगी, जब आपकी भावना ठीक होगी, जब आपकी क्रिया ठीक होगी। Conceptual clarity, emotional purity and dexterity with equanimity (अवधारणात्मक स्पष्टता, भावनात्मक शुद्धता और समता के साथ निपुणता) तीनों को लेकर अपने जीवन को जियें, ये तीनों नेत्र एक साथ काम करते हैं, जैसे शिव के तीन नेत्र थे। शिव का दाहिना नेत्र अखण्ड समाधि में निमज्जित था और सामने भगवती पार्वती कुमारी रूप में खड़ी हुई थी और काम देव ने बाण चलाया था। शिव बायें नेत्र से पार्वती के आत्म-सौन्दर्य को देख रहे थे। तीनों नेत्र से काम देव को देखा और देखते ही उसे भस्मीभूत कर दिया।

क्या आज हमारे समाज में तरुण व तरुणियों के भाल के बीच में तीसरा नेत्र खुला हुआ है जो दर्पित कन्दर्प को देखते ही उसे भस्म कर दे? क्या हमारी आज की शिक्षा हमें इतना चरित्रवान, ज्ञानवान, गुणवान बना पा रही है? क्या हम ऐसा करने के लिए तत्पर हैं और यदि नहीं तो समाज में हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु बढ़ते ही चले जायेंगे। हिरण्य अर्थात् सोना, अक्ष अर्थात् आँख यानी पैसा-पैसा-पैसा। कशिपु यानी बिस्तर अर्थात् भोग की दृष्टि। अर्थ और काम ये दोनों राक्षस आज समाज में उपद्रव मचा रहे हैं और धर्म तथा मोक्ष दोनों गौण होते चले जा रहे हैं। खास तौर पर हिन्दू धर्म निरपेक्ष होते चले जा रहे हैं। हम धर्माभास में, ज्ञानाभास में, भक्ति के आभास में जीने वाले लोग होते जा रहे हैं। हम मात्र आभासों में जीने वाले लोग हो गये हैं। वास्तव में हम पूरा जीवन नहीं जी पा रहे हैं। हमारी सारी शक्ति कहाँ चली गयी है? हमारा दर्शन कहाँ चला गया

है? इसलिए दर्शन को ठीक करना हमारी पहली आवश्यकता है।

यदि हम अपनी अस्मिता की निरन्तरता को बनाये रखना चाहते हैं तो राष्ट्र की चेतना को समझना पड़ेगा। वह स्वतः उस दिशा में हमें आगे ले जाएगी। एक अपार मंगलमयी शक्ति हमारे अन्दर से अपने आप को अभिव्यक्ति कर देना चाहती है। यहाँ देवभाषा संस्कृत के विद्वान भी बैठे हुए होंगे। संस्कृत भाषा को आज विद्यालयों में सिखाया जाना चाहिए नहीं तो विदेश के लोग हमको आकर बताएँगे कि संस्कृत भाषा का महत्व क्या है? डॉ. ब्रायन वीज आकर हमको बतायेंगे कि पुनः जन्म क्या होता है और पूर्व जन्म क्या होता है? Unified force field क्या होता है? Gravitational force, electro magnatic force, strong nuclear force and week nuclear force, psysics force इन सब को जोड़ने वाला जो force है उसके बारे में अब वैज्ञानिक फुसफुसाने लगे हैं कि It must be force of the karma about which the Hindus talk.

वे आकर हमको बतायेंगे तब हम मानेंगे या हम अपने शास्त्रों की, ऋषियों की बात मानेंगे। हमें जीवन को ठीक करना चाहिए, अपने लक्ष्य को ठीक करना चाहिए, हमें अपने दृष्टि को, अपनी दिनचर्या को ठीक करना चाहिए। इसलिए बन्धुओं इस अवसर पर मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि हम आभासों में जीना बन्द करें। हम अपने लक्ष्य का निर्धारण करें और इसके लिए खूब परिश्रम करें। प्रतिदिन पाँच ऋणों का विमोचन करने के लिए पंचयज्ञों को करें अर्थात् देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण, मनुष्यऋण और भूतऋणा यदि हम प्रतिदिन इन ऋणों का विमोचन करेंगे तो हमारे अन्दर कोई मीरा प्रकट क्यों नहीं होगी? हमारे अन्दर कोई रामकृष्ण प्रकट क्यों नहीं होंगे? इसलिए कोई युवक बार-बार पूछ रहा था कि किसने भगवान को देखा है? क्या भगवान पत्थर बनकर बैठा हुआ है? आप भगवान से क्यों नहीं पूछते हैं कि संसार में इतना दुःख क्यों है? इतनी विषमता क्यों है? इतना भेद भाव क्यों है? क्या भगवान में रागद्वेष है? निष्ठुरता है? ब्रह्मसूत्र में यह प्रश्न उठाया गया वैषम्य नैरगुण्य और तुरन्त वेद व्यास जी द्वारा उसका उत्तर दिया गया - कर्म सापेक्षवाद अर्थात वह कर्म सापेक्ष होकर सृष्टि करता है।

आप लोगों में से कितनों के मानस में स्पष्ट है कि संचित-कर्म क्या होता

है, क्रियमाण-कर्म क्या होता है, प्रारब्ध-कर्म क्या होता है? व्यक्ति के स्तर पर और समष्टि के स्तर पर जब तक ईश्वर विषयक हमारी अवधारणा ठीक नहीं होगी तब तक ये तमाशा बन जायेगा। सच बोलने के लिए किसी न्यायालय की आवश्यकता नहीं है। केवल मनुष्य बन जाना ही पर्याप्त है। ईश्वर हजार आँखों से हमें अन्दर और बाहर से सतत् देख रहा है। When you will violate the cosmic law then and there you will be punished (ब्रह्मांडीय कानून का उल्लंघन करने पर आपको तुरंत वहीं पर दंडित किया जाएगा)। आप परीक्षा करके देख लो। कमरे में कमरा उसमें आप जाकर विश्व नियम का उल्लंघन करो, जिसको ऋत अर्थात् धर्म कहते हैं उसकी अवहेलना करो तो उसी समय आपकी प्रेम करने की शक्ति कुंठित हो जायेगी। आपकी सृजनशीलता कम हो जायेगी, आपकी एकाग्रता व स्मृति कम हो जायेगी। आपकी आँखों में धुंधलापन छा जायेगा। आपके ललाट में कालिमा प्रकट हो जायेगी। औरा-मीटर के द्वारा पता चल जायेगा कि आप का आभा-मण्डल म्लान हो गया है। आपकी आँखों का तेज कम हो जाएगा। आपकी मुस्कान नकली हो जाएगी। आपकी वाणी की प्रगल्भता कम हो जाएगी। आपके नर्वस सिस्टम एवं ग्लैण्ड सिस्टम कमजोर हो जायेंगे। आपकी चाल लड़खड़ाने लग जाएगी। जिस कक्ष में आपने विश्व-नियम को तोड़ा है उस कक्ष के अन्दर के vibration भी negative हो जायेंगे और यदि आपने जघन्य पाप किया तो अगले जन्म में भी आपको दण्ड दिया जायेगा। आप मूढ़ योनियों में फेंक दिये जाओगे, ईश्वर के यहाँ ना देर है, ना अंधेर है।

यदि आपने ईश्वर के बनाये नियमों का पालन किया है तो ईश्वर तुरन्त आकर आपको छुएगा, आपको बाहों में भर लेगा। ईश्वर दौड़कर हमसे लिपट जाना चाहेगा, पर हम तुरन्त कहते हैं मैंने किया, इस कामना को किया, तो ईश्वर background में चला जायेगा। यदि आप यह आग्रह रखेंगे कि मैंने इस प्रेरणा से किया है और इस लक्ष्य से किया है तो भगवान तुरन्त पीछे हट जाते हैं। इस बार आप ऐसा करके तो देखो, सब प्रकार के स्वार्थ को छोड़कर निरहंकार होकर किसी कार्य को करके तो देखो, ईश्वर तुरन्त आकर आपसे हवा बन कर लिपट जायेगा। आपको एक मीठा अनुभव होगा, एक गहरी शान्ति आपके हृदय के अन्दर प्रकट होगी, हवा आकर आपको पुचकारेगी। सूर्य की रश्मि आकर आपके भाल का चुम्बन करेगी। जीवन संवेदनशील तत्व है, हम समझते नहीं हैं। हम जीवन का लक्ष्य भूल गये हैं। पूरी भारतीय संस्कृति समवेत रूप से, व्यक्तिगत-

परिवार रूप से हमें उस आत्म-तत्व से साक्षात्कार करवाने के लिए कटिबद्ध है जहाँ पर हम घोषणा कर सकते हैं कि अहं ब्रह्मास्मि-अहं ब्रह्मास्मि। आज हमारा गृहस्थ प्रदूषित हो गया है। गृहस्थ चारों आश्रमों का आधार है बाकी के सारे आश्रम मुरझा जाएंगे यदि यह ठीक नहीं होगा। इसलिए बन्धुओं हमको उस आग को जलाना होगा जो महापुरुषों ने अपने जीवन के अन्दर प्रकट की थी। विदेश में जाकर युवाओं के आदर्श स्वामी विवेकानन्द ने गर्जना की थी-

'One vision I see clear as Life before me that the ancient Mother has awakened once more sitting on her throne, rejuvenated more glorious than ever. Proclaim her, to the entire world with a voice peace and benediction.**'**

उस समय विवेकानन्द के अन्दर एक हिमालय बोल रहा था, गंगोत्री से निकलने वाली गंगा बोल रही थी एवं ऋतम्भरा प्रज्ञा बोल रही थी। वेद ऋचायें बोल रहीं थीं। पूरी भारतीय संस्कृति बोल रही थी। राम कृष्ण परमहंस की प्रज्ञा बोल रही थी जो एक व्यक्ति नहीं बल्कि गुरु रूप थे। हम सब अपने-अपने लक्ष्य का स्पष्ट निर्धारण करें और उसके लिए क्या साधन जुटाने हैं उसको करें।

अपने अन्दर विविक्षा को उत्पन्न करें, अपने अन्दर षट् सम्पति को उत्पन्न करें, अपने अन्दर देवी-सम्पत्ति को निरन्तर बढ़ाते चले जाना, यही एक रास्ता अपनी अस्मिता को शाश्वत् बनाने का। तब नित्य निरन्तर स्पन्दित होते हुए और शिव के चरणों में, शिव के घुंघरू बनते हुए आप सभी नृत्य करेंगे और पूर्णाहंता का साक्षात्कार करेंगे। बन्धुओं यही पथ है-

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमय

अमृत की पिपासा हमारे अन्दर प्रकट हो और आज का मकर संक्रान्ति का दिन सब को वह आशीर्वाद प्राप्त हो कि हम लक्ष्य दिशा की तरफ निरंतर आगे बढ़ते रहें। मैं आप सब के प्रति मंगलकामना प्रकट करता हूँ और जिन्होंने इस महान यज्ञ का आयोजन किया है और इतने बड़े-बड़े विद्वानों को बुलाया है उन सब के प्रति मेरी बहुत-बहुत मंगल कामनाएँ। ओम तत्सत परब्रह्म नमः।

*****

भारतीय सांस्कृतिक अस्मिता की व्यापकता

डॉ. सुभाष चन्द्र कश्यप[1]

राष्ट्रीय पुर्नजागरण को समर्पित अरुन्धती वशिष्ठ अनुसंधान पीठ भारतीय संस्कृति पर चिन्तन-अध्ययन एवं अनुसंधान को सही दिशा और गति देने के काम में जुटी हुई है। पीठ को इस शुभकार्य को सतत् करते रहने के लिए हार्दिक बधाई देना चाहता हूँ। आपने गोष्ठी के लिए जो विषय चुना है वह भी बड़ा ही रोचक और महत्वपूर्ण है। मैंने इसे समझने का अपने ढंग से प्रयास किया। दुर्भाग्यवश जो समुचित तैयारी भाषण देने के लिए करनी चाहिए थी मैं उसके लिए समय नहीं जुटा पाया। आप मुझे क्षमा करेंगे। जहाँ तक विषय का प्रश्न है मुझको लगता है कि सबसे पहले प्रश्न यह उठता है कि आखिर भारत क्या है? भारतीय अस्मिता क्या है? राष्ट्रीय चेतना चिति क्या है? भारत भौगोलिक इकाई है, एक भूखण्ड का नाम है या किसी राज्य क्षेत्र का नाम है जिसका आकार और विस्तार समय के साथ इतिहास में घटता और बढ़ता रहा? क्या वो केवल राजनैतिक संघर्ष है जिसमें विभिन्न राजनैतिक दल सत्ता संघर्ष में लगे रहते हैं तथा आम लोग अपनी नैसर्गिक आवश्यकताओं व आकांक्षाओं की पूर्ति करने के लिए छटपटाते रहते हैं? क्या भारत 15 अगस्त 1947 या 26 जनवरी 1950 ई. को जन्मा कोई देश है जिसकी अस्मिता या पहचान की बात हम कर रहे हैं? यह भी कहा जाता है कि भारत की एकता अंग्रेजों की देन है इस विषय में भी अनेक भ्रान्तियाँ फैली हुई है। उसकी जड़ में जो संकल्पनात्मक भ्रान्ति है उसका मुख्य कारण राष्ट्र, राज्य के बीच जो अन्तर है उसको न समझना।

---

[1] सुविख्यात संविधान विशेषज्ञ एवं पूर्व महासचिव लोकसभा।

मित्रों मेरे विनीत मत में भारत सहस्त्रों-सहस्त्रों वर्षों से चली आ रही सनातन संस्कृति की एक अविरल धारा है, जो निरंतर चेतना है, सतत् जीवन है, गतिशील है और स्पन्दनशील है। भारतीय अस्मिता में केवल निरन्तर ही नहीं नित्य भी जोड़ना चाहिए। गंगा के जिस प्रकार गंगोत्री से निकलकर गंगा सागर तक जाने में अनेक छोटी-बड़ी नदियाँ इसमें मिलती हैं पर वह गंगा ही रहती है। उसी प्रकार अनेक प्रभावों को अपने में समेटे हुए भी भारतीय संस्कृति की पहचान एक ही रहती है। कुछ लोग मिली-जुली जैसे शब्दों का प्रयोग करके भ्रान्तियाँ फैलाते हैं। हमें इस बात पर आग्रह करना चाहिए कि भारतीय संस्कृति एक है चाहे उसमें कितनी ही संस्कृतियाँ मिल जाएँ। अतः अनेक प्रभावों को समेटे हुए भी भारतीय संस्कृति एक रहेगी।

मित्रों मेरा निवेदन है कि भारतीय अस्मिता देशतीत है, कालातीत है। कौन कह सकता है कि कैलाश मानसरोवर, सिन्धु, तक्षशिला, अंगकोरवाट और मोहनजोदड़ो भारतीय अस्मिता के अंग नहीं हैं। मैं समझता हूँ कि यह सब भारतीय अस्मिता के अभिन्न अंग हैं। जैसा मैंने प्रारम्भ में कहा कि इसे देश की सीमाओं से, देश के आकार से बाँध नहीं सकते यह देशतीत है कालातीत है। मेरा सौभाग्य रहा पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के पास बैठने और उनसे बातें करने का। वे एक बात बार-बार जोर देकर कहते थे कि भारतीयता की पहचान भारत की संस्कृति ही है। भारत की अस्मिता उसकी गौरवशाली परम्पराओं आध्यात्मिक ज्ञान, मान्यताओं और मूल्यों में ही निहित है।

कई बार देखने में आता है कि जिसको हम इण्डिया, भारत, हिन्दुस्तान कहते हैं उससे बाहर भारत की अस्मिता को अधिक सुरक्षित रखा गया है। निजी अनुभवों के आधार पर कह सकता हूँ कि जब हम देश के बाहर जाते हैं जैसे कम्बोज जिसे कम्बोडिया कहते हैं, मॉरीशस, सिन्धु एशिया जिसे इण्डोनेशिया भी कहा जाता है, वहाँ सदियों से बसे हुए भारतीय परिवारों से मिलते हैं तो हमें भारतीय अस्मिता की अधिक शुद्ध देशातीत निरंतरता दिखाई पड़ती है। मुझे याद आता है कि एक बार हम लोग एक संसदीय शिष्टमंडल में भाग लेने मॉरीशस गये। वहाँ पर प्रधानमंत्री ने अपने घर पर चाय के लिए बुलाया। थोड़ी देर बाद प्रधानमंत्री जी अन्दर गये और अपने हाथों में चाय की ट्रे लेकर आए। मेज पर

उन्होंने ट्रे रखी और हम लोगों के लिए चाय बनायी। मैंने कहा Your excellency! you are impressing us. उन्होंने हिन्दी में जवाब दिया कि भाई यह तो भारतीय संस्कृति है मैं इसको तो नहीं छोड़ सकता। हम लोगों के यहाँ कोई मेहमान आते हैं तो क्या हम लोग इस संस्कृति का पालन नहीं करते हैं? हमारे यहाँ कई बार वेटर, बैरा, नौकर आदि चाय बनाकर लेकर आता है। भारतीय संस्कृति में यह भी शामिल है यह मैं देश के बाहर जाना। संसदीय शिष्टमण्डल में मैं एक बार थाईलैण्ड गया वहाँ के महाराजा से मिलने का अवसर मिला। उनका नाम था अतुल्य तेज भूमिबल राम। उन्होंने सत्तर (70) वर्षों की आयु तक राज किया, कुछ वर्ष पूर्व देहान्त हुआ है। वह अपने को राम की राज्य परंपरा से जुड़ा हुआ मानते थे और आज के राजा भी मानते हैं।

हमारे डेलिगेशन के लीडर स्पीकर थे कृष्णकान्त। बातचीत के बीच में उनके मुख से निकला Your majesty, we have to walk very to catch up with the west. (महाराज, हमें पश्चिम का साथ पकड़ने के लिए बहुत ही चलना होगा)। तब उन्होंने रोकते हुए कहा (No, no your excellency, they need thousands of years to reach Aham Bramhasmi Sarvam Khalvidam Bramh and Tattvamasi) नहीं, महोदय अहं ब्रह्मस्मि, तत्वमसि, सर्वं खल्विद ब्रह्म तक पहुँचने उन्हें हजारों वर्ष लगेंगे। अंगकोरवाट में हमें एक गाइड मिला, वह मजहब से मुसलमान था। उसने महाभारत पढ़ा था तथा उसको हम लोगों से कहीं अधिक महाभारत के विषय में ज्ञान था। वह महाभारत और रामायण में जो चित्र थे उनके बारे में कई घण्टों तक डिटेल में जा-जाकर समझाया। उसका ज्ञान हमसे कहीं अधिक प्रभावशाली था।

इण्डोनेशिया जिसे मैं इंडस, इंदू, हिन्दू कहता हूँ। आप में से जो लोग जकार्ता गये होंगे उन्होंने देखा होगा जकार्ता में जो सबसे प्रमुख सिटी सेंटर है वहाँ बहुत बड़ा कृष्ण-अर्जुन संवाद का दृश्य रखा हुआ है। वह भी भारतीय अस्मिता का प्रभाव है। जकार्ता के बाहर कुछ मील दूर एक मंदिर है, जहाँ तीन बड़े-बड़े पत्थर रखे हैं, जिसे त्रिमूर्ति के नाम से जाना जाता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप में इनकी पूजा की जाती है। मंदिर के सामने एक चबूतरा बना हुआ था जिस पर कुछ लोग बैठे हुए थे, जो नीचे की ओर धोती पहने हुए थे और ऊपर की

ओर कुछ नहीं पहने हुए थे। वे लोग पीतल की घण्टियाँ बजा रहे थे और लग रहा था जैसे संस्कृत के श्लोक बोल रहे हों। उस समय पूजा चल रही थी। जब पूजा समाप्त हो चुकी थी तब जो हैवी प्रिस्ट था मोहम्मद हामिद हमारे पास आया और बोला कि ये जो मूर्तियाँ आप देख रहे हैं इसके अतिरिक्त यहाँ एक विशाल मंदिर और भी था जिसका ध्वंसावशेष मैं आप लोगों को दिखाऊँगा। जब हम वहाँ गये तो वहाँ एक मंदिर का पुनर्निर्माण (रि-कन्सट्रक्शन) चल रहा था। वह हमको छोटी-छोटी मूर्तियाँ उठा-उठा कर दिखा रहे थे और कह रहे थे कि इसमें यहाँ वीणा होनी चाहिए थी वह नहीं है। इसके निर्माण के लिए हमने यूनेस्को से मदद ली है, भारत से भी मदद ली है। आप हमारे प्रधानमंत्री को समझाइए कि हमें और पैसा दें, क्योंकि हम चार-पाँच सालों से यह कर रहे हैं पूरा करने में हमें बीस साल और लग जायेंगे। हमारे डेलीगेशन के एक सदस्य ने उनसे पूछा कि आप इतने इमोशन के साथ कर रहे हैं आप का नाम क्या है? उन्होंने कहा मुहम्मद हामिद। तब उन्होंने कहा आप यह कैसे कर रहे हैं, इस्लाम में तो मूर्ति (idol) को बहुत बुरा माना जाता है और आप इतने श्रद्धा और प्रेम से बता रहे थे यह कैसे? उन्होंने कहा कि यह तो हमारी विरासत है। हम ने अपना धर्म बदला है विरासत नहीं बदली है। (This is our heritage. We have changed our religion but not changed our heritage.) जब हम भारतीय अस्मिता की बात करते हैं तो उसमें ही मोहम्मद हामिद जैसे लोग भी शामिल हैं। मजहब और विरासत में यही फर्क है।

यहीं दिल्ली में भोजन का निमंत्रण मिला वहाँ पर भारतीय पद्धति से नीचे आसन पर बैठकर भोजन की व्यवस्था थी। मेरे बराबर में जो व्यक्ति बैठे हुए थे वे इण्डोनेशिया के राजदूत थे। हम लोग पालथी मारकर बैठ गये। मैंने उनसे कहा कि योर एक्सीलेन्सी आपको बहुत असुविधा हो रही होगी। उन्होंने कहा, What are you talking? I am a Bramhin from Bali (आप क्या कह रहे हैं? मैं बाली का एक ब्राह्मण हूँ।) भारतीय संस्कृति भारतीय सीमाओं में ही केवल नहीं बंधी है, वह दूर-दूर तक में फैली हुई है।

अमेरिका के वाशिंगटन में रहने का मौका मिला। हमने रहने के लिए जो कमरा किराए पर लिया था वह सेकेण्ड फ्लोर पर था। फर्स्ट फ्लोर से होकर

जाना पड़ता था। हमने देखा वहाँ पर स्वामी योगानन्द जी का बहुत बड़ा सा चित्र लगा हुआ था और उसके सामने ऊपर से बिल्कुल नंगा एक ह्वाईट अमेरिकन पद्मासन में अगरबत्ती जलाकर पूजा कर रहा था। बाद में बातचीत में पता चला कि वह तो योगानन्द का बहुत बड़ा भक्त था। उसने कहा मकान मालकिन से मिलोगे तो बहुत अच्छा लगेगा। मैं मकान मालकिन से मिलने गया। वह बोली मैं तुम्हें कुछ दिखाना चाहती हूँ (I want to show you something)। वह अन्दर गयी और वहाँ से स्वामी विवेकानन्द का फोटो ले आयीं। उस पर स्वामी विवेकानन्द के हस्ताक्षर थे, जिसे वह विशेष रूप से दिखाना चाहती थी। वे महिला कोई अस्सी वर्ष की रही होंगी। वह बोली यह मेरी माता जी को स्वामी विवेकानन्द जी ने हस्ताक्षर करके दिया था।

भारतीय अस्मिता के और बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं। कम्बोडिया के राजा का नाम नरोत्तम सिंहानुक जो शुद्ध संस्कृत शब्द है, वे अपने को वर्मन राजवंश का मानते हैं। बीच में वर्मन नाम उन्होंने छोड़ दिया था लेकिन जब हम वहाँ थे तभी उन्होंने अपने नाम के साथ वर्मन शब्द जोड़ा। जैसा सुब्रह्मण्यम स्वामी जी ने कहा यदि लोग हमारे महापुरुषों एवं प्राचीन विभूतियों को अपना पूर्वज मान लें तो काफी समस्या सुलझ जाए। जिन दिनों रामजन्म भूमि का विषय चल रहा था एक बार कैफी आजमी जो शबाना आज़मी के पिता थे, एक रात्रि भोज में कहने लगे कि ये जो लोग राम जन्म भूमि की रथ यात्रा कर रहे हैं इनसे ज्यादा तो राम हमारे पूर्वज थे। मैं अयोध्या के पास आजमगढ़ का रहने वाला हूँ। मैंने कहा कि यदि यही आपके सब साथी मान लें तो समस्या काफी हद तक सुलझ जायेगी पर वो मानते नहीं हैं। मो. इकबाल जिन्होंने पाकिस्तान का नारा बुलन्द किया कश्मीरी पण्डित थे। विश्वविद्यालय में जब मैं अध्यक्ष था तब शेरे कश्मीर शेख अब्दुल्ला को मैंने बुलाया, उन्होंने अपने भाषण में कहा मेरे पूर्वज जिन्होंने कश्मीर को बसाया कश्यप थे और उन्होंने माना कि उनके दादा, परदादा कश्मीरी पण्डित थे। यदि सुब्रह्मण्यम स्वामी जी का फार्मूला अपना लें तो काफी हद तक समस्या हल हो सकती है।

मित्रों! यह बहुत ही दुःख का विषय है कि हमारा देश स्वतंत्रता के बाद परकीय संस्कृति के अधिक आधीन हो गया। अंग्रेजी भाषा, खान-पान, वेष-भूषा,

तौर-तरीके और बौद्धिक चिन्तन सभी भारतीय अस्मिता पर हावी हो गए। राजनीतिक, प्रशासनिक ढाँचे को भी हमने आजादी के बाद ज्यों का त्यों कायम रखा। आज भी कॉलोनियल मॉडल ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन चल रहा है। आज भी 19वीं सदी के कानून चल रहे हैं। वही साहब, वही चपरासी, वही बाबूगिरी है। संविधान में कुछ भी लिखा हो लेकिन आज भी हम वही टर्मिनोलॉजी अपना रहे हैं जो कॉलोनियल मॉडल की है। मुझे अकबर इलाहाबादी का एक शेर याद आता है-

मुझे नफरत नहीं थी अंग्रेज की सूरत से।
नफरत थी तो उसके तर्जे हुकूमत से।।

अंग्रेज चले गए पर तर्जे हुकूमत वही चली आ रही है। भारतीय संविधान बना तो अंग्रेजी में ही बना, किसी भारतीय भाषा में नहीं बना। इसको बनाने वाले प्रायः पाश्चात्य संस्कृति और संस्कारों में पले-बढ़े विदेशी मानकों, वादों एवं विचारों से अनुप्रमाणित लोग थे। उनका स्वकीय भारतीय भाषाओं से, चेतना और आकांक्षाओं से, मतों से अधिक लेना देना नहीं था। उन्हें तो भारत की खोज करनी पड़ी थी, यही तो थी डिस्कवरी ऑफ इण्डिया। भारत के प्रथम प्रधामंत्री ने स्वयं कहा था कि "I am the last Englishman to rule in India".

मैं एक बात और आप से निवेदन करना चाहूँगा कि- ''भारतीय समाज में जब मिली-जुली संस्कृति की बात लोग करते हैं तब इस बात पर जोर देते हैं कि हमारे यहाँ विविधता बहुत है। Plural society और unity in diversity की बात करते हैं। सिर्फ विविधता को महिमा मंडित करते हैं, उनका diversity पर पूरा ध्यान रहता है। वे विविधता को ऐसा महिमा मंडित करते हैं जैसे कि यह उनका आराध्य हो। वे यह भूल जाते हैं कि यूनिटी इन डायवर्सिटी में वहाँ पर विविधता में एकता पर अधिक ध्यान है। विविधता में एकता यह हमारा आदर्श है। बल दिया जाना चाहिए एकता पर न कि विविधता पर, लेकिन राजनीतिक साम्प्रदायिक कारणों से विविधता को महिमामंडित किया जाता है और एकता पर ध्यान नहीं दिया जाता है। आज भी मेरे विनीत मत में भारतीयता की एक पहचान है। विविधता से एकता की ओर एकत्व की यात्रा ही भारतीय अस्मिता है, भारतीयता की पहचान है। मेरे विचार से एकात्म की ओर, एकत्व की ओर, एकता

की ओर बढ़ना ही भारतीय अस्मिता है।

मित्रों हजारों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों ने अपने से प्रश्न किया कि मैं कौन हूँ, मैं क्यों आया, जीवन का उद्देश्य क्या है, कहाँ तक जा सकता हूँ, पूर्णता की किस सीमा तक जा सकता हूँ? और उन्होंने जाना हम तुच्छ नहीं हैं, दिव्य हैं और अमरत्व की संतान हैं। हम में से प्रत्येक अमरत्व की संतान है। हम में जो हमारे भीतर आत्मा है, जो दिव्य ज्योति है अलौकिक है। हमें जब यह ज्ञात हो जाता है कि मैं आत्मा हूँ तब हमें यह भी ज्ञात हो जाता है कि मैं अमर हूँ और हमें विस्तार प्राप्त होता है। जय शंकर प्रसाद की अमरत्व पर कविता हमें याद आती है :

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती।।
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो।
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो बढ़े चलो।।

*****

भारत की आर्थिक अस्मिता

डॉ0 बजरंग लाल गुप्त[1]

भारतीय अस्मिता की निरंतरता की चर्चा हो और अर्थ-चिन्तन की चर्चा न हो तो संगोष्ठी अधूरी रहती है, लेकिन करते यह हैं कि आज अर्थ-चिन्तन की चर्चा कम होती है और अनर्थ-चिन्तन की चर्चा ज्यादा होती है। जिस अर्थशास्त्र को अर्थ चिन्तन को इतने वर्षों तक हम पढ़ते-पढ़ाते रहे वह भारतीय अस्मिता का प्रकटीकरण करने वाला अर्थ-चिन्तन नहीं रहा। यदि अर्थ-चिन्तन के निरन्तरता की बात करें तो हमारे यहाँ अनेक मनीषी-विद्वान् हुए। वेदव्यास, वाल्मीकि, कौटिल्य और शुक्राचार्य जैसे मनीषी स्वामियों से लेकर वर्तमान में सुब्रह्मण्यम स्वामी तक निरंतरता है। जब हम भारत की धरती पर खड़े होकर के निरन्तरता की चर्चा करते हैं तो स्वाभाविक रूप से भारतीय संस्कृति का प्रकटीकरण होता है और आजकल हम भारतीय संस्कृति को हिन्दू और हिन्दुत्व इस रूप में प्रकट करते हैं, पर इसके सम्बन्ध में नादानी और नासमझी के कारण इसको छोटा मान लिया गया, इसको संकुचित मान लिया गया।

ये हिन्दूत्व है क्या? एक वाक्य मैं कई बार कहता हूँ ''पुरातन है पर नित्य नूतन है अर्थात् सनातन, चिरंतन, निरंतन ऐसे सांस्कृतिक जीवन प्रवाह का नाम हिंदुत्व है, भारतीय संस्कृति है''। उसमें जब प्रवाह की चर्चा होती है तो उसमें निरन्तरता आयेगी ही आयेगी। निरंतरता किसमें है? इसका स्वाभाविक उत्तर है प्रवाह में। आप हरिद्वार में हरि की पौड़ी पर गंगा के किनारे जाकर खड़े हो जाएँ, वहाँ आपको एक के बाद एक जलकण दिखाई देगा जो चला जायेगा, जल कण

---

[1]प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एवं पूर्व प्राध्यापक अर्थशास्त्र, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

बदलता है किन्तु नदी का प्रवाह नहीं। भारतीय चिन्तन की, भारतीय संस्कृति की, भारतीय जीवन मूल्यों की जिनको आप नाम कुछ भी दीजिए, इसका सबसे बड़ा कोई वैशिष्ट्य है तो निरन्तरता ही है। निरन्तरता का मतलब हम ने यह कभी नहीं माना कि जो कुछ पाँच सौ साल पहले या हजार साल पहले सोच लिया गया उसके बाद सोचने की खिड़की ही बंद हो गई। ऐसा भारतीय चिन्तन में नहीं माना गया। ये वैशिष्ट्य है और यह वैशिष्ट्य जीवन के हर क्षेत्र में प्रकट हुआ और बहुत गहराई से प्रकट हुआ, सम्पूर्ण आयामों को लेकर प्रकट हुआ है।

इस आर्थिक सत्र में जिन अर्थों में प्रकटीकरण की बात कही गयी है उसको आपके सामने रखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। बहुत बड़ी गलतफहमी है कि हम जिन शास्त्रों को पढ़ते हैं और पढ़ाते हैं वे किन्हीं पश्चिम के विद्वानों की देन हैं। भारत के लोग तो इस प्रकार का विचार करते ही नहीं थे और खासतौर से सर्वाधिक गलतफहमी आर्थिक क्षेत्र को लेकर है। कोई वेद पढ़ेगा तो लोग क्या कहेंगे? एक बहुत बड़ी गलतफहमी पनपी कि वेदों-शास्त्रों में लिखा है यह संसार असार है, तुम्बा उठाओ और हिमालय में तपस्या करने चले जाओ।

मुझे अपने जीवन की एक घटना याद है। जब मैं सातवीं कक्षा में पढ़ता था। मेरे अध्यापक ने गीता-जयंती पर आकर कहा बच्चों तुम लोग दान दोगे। सभी बच्चों ने हाथ खड़ा कर दिया। हमने सोचा क्या माँगेंगे एक-दो रुपये। उन्होंने कहा कि दान में आप हमें यह वचन दो कि रोज गीता का पाठ किया करोगे। अब तो पचास प्रतिशत के हाथ खड़े हुए और पचास प्रतिशत के हाथ नीचे हो गये। मेरा हाथ खड़ा रहा। मैं गाँव का रहने वाला हूँ और जब मैं गाँव में आया स्नान आदि करके गीता पढ़ना शुरू कर दिया। एक दिन देखा, दो दिन देखा अब मेरी माँ को चिन्ता हो गयी। मेरी माँ ने पिता जी से कहा कि बच्चा तो गीता पढ़ने लग गया, यह बाबा बन जायेगा, जल्दी से इसका विवाह करो।

शास्त्रों का अध्ययन करने का अर्थ है कि संसार में चलने वाली चीजों का अध्ययन, लेकिन इस विषय में बहुत बड़ी गलतफहमी हैं। इस दृष्टि से मैंने शास्त्रों का जो थोड़ा बहुत अध्ययन किया उससे ध्यान में आया कि कितना गहराई के साथ हमारे मनीषियों ने अर्थ-चिन्तन पर विचार किया है। आज-कल के तथाकथित आधुनिकतम अर्थशास्त्री उतनी गहराई से उनका विश्लेषण नहीं कर

पाए। पाँच-सात उदाहरण मैं आपके सामने देता हूँ। जब किसी भी शास्त्र को पढ़ते हैं तो उसे परिभाषित करना पड़ता है कि यह क्या है। अर्थ-शास्त्र में भी यह परिभाषित किया गया कि अर्थशास्त्र क्या है (What is Economics) । हमारे मनीषियों ने भी अर्थशास्त्र को परिभाषित किया। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र को परिभाषित किया कि-

''मनुष्याणां वृत्तिः मनुष्यवती भूरिति अर्थः।
तस्याः पृथिव्यां लाभपालनोपायः शास्त्रं इति।।''

जो मनुष्यों को वृत्ति प्रदान करता है वह अर्थ है। मनुष्य से संयुक्त भूमि ही अर्थ है अर्थात् मनुष्य की आजीविका के प्राकृतिक संसाधन जो भूमि के अन्दर और बाहर है वह अर्थ है। उसकी प्राप्ति तथा पालन अर्थात् व्यवहार के जो उपाय हैं उनकी विवेचना करने वाले शास्त्र को अर्थशास्त्र कहते हैं। वह शास्त्र जो प्राकृतिक संसाधन और मानवीय संसाधन के लाभ और पालन की नीतियाँ बताने वाला और सिद्धान्त बताने वाला है वह अर्थशास्त्र है। इन दोनों प्रकार के संसाधनों का रक्षण, पालन और पोषण का सिद्धान्त है वह अर्थशास्त्र है।

हमारे यहाँ एक दूसरे मनीषी हुए शुक्राचार्य। शुक्राचार्य दैत्यों के गुरु थे। दैत्यों का गुरु बनना कोई सामान्य बात नहीं है। सज्जन लोगों का अध्यापक तो कोई बन सकता है, लेकिन राक्षसों का जो आचार्य होगा वह कितना बुद्धिमान होगा हम विचार कर सकते हैं। शुक्राचार्य ने दो जगह पर अर्थशास्त्र की परिभाषा दी है। वे कहते हैं 'सुयुक्ताऽर्थार्जनम् यत्र ह्यार्थाशास्त्रं तदुच्यते'। अच्छे ढंग से नैतिकता के साथ, प्रमाणिकता के साथ अर्थार्जन के सिद्धान्त बताने वाले को अर्थशास्त्र कहते हैं। आजकल पढ़ाया जाता है Economics has nothing to do with ethics. अर्थशास्त्र का पहला पाठ पढ़ाया जाता है कि इकनॉमिक्स का नैतिकता के साथ कोई लेना-देना नहीं है। लेकिन शुक्राचार्य ने क्या पढ़ाया? अर्जन करना है तो कौन से तरीके से? उन्होंने कहा नैतिकता के आधार पर, ईमानदारी के आधार पर। आज एम.बी.ए. के स्टूडेण्ट को क्या पढ़ाते हैं "You have to achieve your target any way."

अब हम एक बात और कहना चाहते हैं कि लोग यह कहते हैं कि भारत में अर्थशास्त्र के सम्बन्ध में बहुत गहराई से विचार नहीं किया गया है। दो-चार

उसके पहलू मैं रखना चाहता हूँ। कोई भी आर्थिक तंत्र होगा उसमें लोगों की जरूरतों को पूरी करने के लिए पहली महत्वपूर्ण इकनॉमिक एक्टिविटी होती है एक्सचेन्ज, लेना-देना, खरीद-बिक्री आदि। उसके बिना अर्थव्यवस्था नहीं चल सकती। अब प्रश्न उठता है एक्सचेन्ज के सम्बन्ध में प्राचीन समय में भारत में कोई व्यवस्था थी या नहीं? कोई चिंतन था या नहीं था? बहुत सुन्दर व्यवस्था थी, बहुत सुन्दर चिन्तन था। जब हम विस्तार के साथ पढ़ते हैं तो एक्सचेन्ज के सब महत्वपूर्ण प्रकार मिलते हैं। वस्तु का वस्तु के साथ एक्सचेंज, वह कैशलेस इकोनॉमी का प्रकार था। बहुत बड़े पैमाने पर वस्तु का वस्तु के साथ विनिमय होता था और उसके सिद्धान्त दिए हुए हैं, जिसके विस्तार में मैं नहीं जा रहा हूँ। जैसे-जैसे मनुष्य की जरूरतें बढ़ती हैं वैसे-वैसे कोई न कोई एक्सचेंज के माध्यम विकसित होते हैं और एक्सचेंज के अनेक तरीके विकसित होते हैं। पहले किसी वस्तु को एक्सचेन्ज का माध्यम मान लिया गया फिर धीरे-धीरे उसे आकार दे दिया गया। यदि आप वेद पढ़ेंगे तो हिरण्यपिंड यानि सोने की विशेष प्रकार की आकृति को एक्सचेंज का माध्यम माना गया। बाद के काल खण्ड में निष्क आयानिष्क भी एक प्रकार की स्वर्ण मुद्रा ही थी। फिर पाणिनि और पतंजलि ने कार्षापण नाम की मुद्रा का वर्णन किया है। हमारे यहाँ एक्सचेंज करने के लिए भिन्न-भिन्न माध्यमों का प्रयोग होता था। यह कहना गलत है कि मुद्रा चाहे वह धातु की हो या कागज की यह नवीन युग की देन है। प्राचीन काल से मुद्रा के प्रयोग होते आ रहा है। मनीषियों का वैशिष्ट्य यही था कि किस काल-खण्ड में कहाँ पर किसका प्रयोग होना चाहिए उसकी अनुमति देते थे। यदि किसी काल-खण्ड में किसी स्थान पर कोई चीज अव्यवहारिक है तो उन्होंने नहीं माना।

वस्तुओं के सम्बन्ध में चिंतन को देखें तो वस्तुएँ दो प्रकार की होती हैं, एक मूल्य रहित (Free Goods) होती है और एक का आर्थिक मूल्य (Economic Goods) होता है। अब हवा का कोई मूल्य नहीं है। नदी के किनारे खड़े हो जाएँ तो जल का कोई मूल्य नहीं पर उसी वस्तु का मूल्य तब बन जाता है जब वह आर्थिक वस्तु (Economic Goods) बन जाती है। इकोनॉमिक गुड्स की तीनों तरह की विशेषताओं का वर्णन शुक्राचार्य ने किया था। वर्तमान में भी वही पढ़ा रहे हैं। ऐसा मुझे लगता है कि शुक्राचार्य का चिंतन पढ़ा रहे हैं पर गलत

पढ़ा रहे हैं। शुक्राचार्य ने कहा था किसी भी वस्तु के मूल्य में तीन प्रकार के गुण होने चाहिए। पहला गुणसंश्रय अर्थात् उपयोगिता होनी चाहिए, क्योंकि आप ऐसे किसी वस्तु का मूल्य देने के लिए तैयार नहीं होंगे जो आप के लिए उपयोगी नहीं है। दूसरा उन्होंने सुलभता-दुर्लभता अर्थात् वस्तु सुलभ होगी तो आप उसका मूल्य क्यों देंगे? नदी के किनारे यदि जल उपलब्ध है तो उसका मूल्य कोई क्यों देगा? लेकिन शहर में यदि उसका अभाव है तो मूल्य अवश्य देगा। इसलिए शुक्राचार्य ने माँग और आपूर्ति को मूल्य निर्धारण का कारण माना है। तीसरा उन्होंने बताया व्यवहारक्षम अर्थात जो वस्तु एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को ट्राँसफर की जा सके। जिसका ट्राँसफर नहीं किया जा सकता उसका मूल्य नहीं है। ऐसा शुक्राचार्य ने मूल्य के सम्बन्ध में बताया। अब मूल्य के सम्बन्ध में दो बातें मैं और बताना चाहूँगा। मूल्य का निर्धारण कैसे हो? कौन निर्धारित करेगा कि किसी वस्तु की कितनी कीमत देनी चाहिए और कितनी नहीं देनी चाहिए? इसके सम्बन्ध में भी समय-समय पर अनेक तरह के प्रयोग हुए हैं, अनेक तरह की व्यवस्थायें दी गयी हैं, यदि उस व्यवस्था में दोष आ गया है तो उस व्यवस्था को बदल दीजिए।

यदि हम जातक कथाएँ पढ़ेंगे तो जातक कथाओं में यह आता है कि राजा किसी अधिकारी को नियुक्त कर देता था कि हमारे राज्य में जो वस्तु बिकने के लिए आयेगी उसका मूल्य तुम निर्धारित करोगे। उसको मानक मानकर लेन-देन करते थे। मूल्य निर्धारण करने वाले अधिकारी को अग्घ्रकारक कहते थे। यह लम्बे समय तक चलता रहा बाद में जाकर इसमें दोष आ गया। तंडुलनावी जातक में ऐसा वर्णन आता है कि राजा के राज्य में एक घोड़ा बिकने के लिए आया। घोड़ा बेचने वाले ने कहा, मैं यह घोड़ा बेचना चाहता हूँ उसका मूल्य तय करो। उसका मूल्य तय करने वाले ने उसका मूल्य तय कर दिया एक कटोरे के बराबर चावल। उस व्यक्ति को लगा कि मैं इतना बढ़िया घोड़ा बेचने के लिए लाया इसका मूल्य निर्धारित कर दिया एक कटोरा चावल। वह लोगों के पास गया और शिकायत की। लोगों ने कहा तुम पहले उसके पास गये थे या नहीं? जाओ उससे मिलकर आओ। वह उस अधिकारी के पास गया और कहा साहब आप ने यह क्या कर दिया। मैं इतना अच्छा घोड़ा लेकर आया आपने उसका मूल्य मात्र एक कटोरे चावल रख दिया। तब अधिकारी बोला, पहले क्यों नहीं आया? उसने

कहा गलती हो गयी। तब वह प्रार्थना-पत्र डाला कि पुनः निर्धारण किया जाए। प्रार्थना-पत्र डालने के बाद उसी घोड़े का मूल्य दस एकड़ जमीन के बराबर कर दिया। अब इस बात से ध्यान में आ गया कि इस व्यवस्था में दोष आ गया। जातक कथाओं में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जब हमारे एक्सचेन्ज के सिस्टम में दोष आ गया। चोर बाजारी शुरू हो गई।

मनुस्मृति में मनु ने इस सिस्टम को बदल दिया। मनु स्मृति में वर्णन आता है कि एक व्यक्ति कीमत का निर्धारण नहीं करेगा। उसका एक बोर्ड होगा। उसमें भाई-भतीजावाद नहीं चलेगा। उन्हें योग्यता के आधार पर नियुक्त किया जाएगा। उसके विस्तार में मैं नहीं जाऊँगा। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया कि निर्धारण करते समय क्रेता एवं विक्रेता दोनों के हित का ध्यान रखना चाहिए।

अर्थोऽनुग्रहकृत कार्यः क्रेतुर् विक्रेतुर् एव च।।[1]

यदि कीमत क्रेता के क्रय-शक्ति से ज्यादा होगी तो वह खरीद ही नहीं सकेगा। कीमत बहुत कम रहेगी तो विक्रेता को नुकसान होगा, तब वह उत्पादन क्यों करेगा? आज कल हम समाचार पत्रों में पढ़ते हैं कि आलू और टमाटर की कीमत इतनी कम हो गयी है कि सड़कों पर फेंका जा रहा है। इसलिए याज्ञवल्क्य कहते हैं कीमत निर्धारित करते समय क्रेता व विक्रेता दोनों के हितों का ध्यान रखना चाहिए। आजकल उपभोक्ताओं का शोषण हो रहा है उस ज़माने में भी होता था। उस समय भी कमियाँ थीं, लेकिन खोजकर उसके लिए उचित प्रावधान की व्यवस्था करते थे।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र उपभोक्ता एवं उत्पादन (Consumer and Production) के क्षेत्र का एनसाइक्लोपेडिया है। उपभोक्ता के क्षेत्र में काम करने वाले लोगों को कौटिल्य का अर्थशास्त्र अवश्य पढ़ना चाहिए। उन्होंने कहा कि उपभोक्ता को शोषण से बचाने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति करनी चाहिए। इसके लिए कौटिल्य के अर्थशास्त्र में छः प्रकार के अधिकारियों का वर्णन मिलता है। मैं विस्तार में नहीं जाना चाहता, परन्तु जिन-जिन कारणों से उपभोक्ता का शोषण हो सकता है उन-उन कारणों से बचाने के लिए कौटिल्य ने उस समय

[1]याज्ञवल्क्य स्मृति - 2/253

में अधिकारियों की नियुक्ति का प्रावधान किया है। बहुत ज्यादा शोषण माप-तौल में होता है। विक्रेता तुला को किस प्रकार दण्डी मारकर उपभोक्ता का शोषण कर सकता है उसका वर्णन है। तराजू कैसी बननी चाहिए, बाँट कैसे बनने चाहिए इसका वर्णन है। सोलह प्रकार के तराजुओं का वर्णन कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है। कौन सा सामान बेचने के लिए कौन सी तराजू होनी चाहिए, बाँट किस पदार्थ का बना होना चाहिए इतने गहराई के साथ विचार किया गया है।

स्मृतियों में एक और रोचक जानकारी मिली मुझे क्रय-विक्रय अनुशय की। शायद ही दुनिया के किसी अर्थ-व्यवस्था में इस प्रकार का प्रावधान हो। क्रेता ने कोई सामान खरीदा और खरीदकर घर आया, फिर उसे लगा कि उसके साथ गलत हुआ, अब वह इसे लौटा सकता है या नहीं लौटा सकता। आजकल लिखा रहता है कि एक बार बिका हुआ या खरीदा हुआ सामान वापस नहीं किया जाएगा। आप वापस करने जाओगे तो विक्रेता वापस नहीं करेगा। स्मृतियों में वर्णन है कि क्रेता ने कोई सामान खरीदा परन्तु घर जाकर उसे लगा कि उससे गलती हो गयी, मैं धोखे में फँस गया तब बहुत वृहद् वर्णन है कि क्रेता किस परिस्थिति में कौन-कौन सा सामान लौटा सकता है। इसी प्रकार विक्रेता के लिए भी यदि उसको लगा कि सामान गलत बिक गया, मैं ठीक ढंग से सामान का मूल्य नहीं बता पाया, देना कोई और सामान था दे दिया कोई अन्य। आज इसके लिए कोई प्रावधान है? आज कोई प्रावधान नहीं है, लेकिन उस समय यह प्रावधान था कि विक्रेता अपनी बेची हुयी वस्तु को वापस प्राप्त कर सकता था और फिर से कीमत निर्धारण कर सकता था। क्रेता और विक्रेता दोनों का शोषण न हो इस प्रकार की व्यवस्था का वर्णन मिलता है।

आजकल मजदूरी की बहुत चर्चा होती है मजदूरी निर्धारण के सम्बन्ध में अपने यहाँ बहुत विस्तार से कहा गया। तीन प्रकार के मजदूरी का वर्णन मिलता है। एक को कहते हैं कार्यमाना, यानी काम के हिसाब से मजदूरी। मेरा पैंट सिल दिए तो इतना मजदूरी दूँगा, शर्ट सिल दिए तो इतना मजदूरी दूँगा, यानी पीस के हिसाब से मजदूरी। दूसरी को कहते हैं कालमाना, यानि समय के हिसाब से मजदूरी जैसे बहुत से लोगों को वेतन मासिक मिलता है। तीसरी है कार्य-कालमान अर्थात इतने समय में इतना कार्य कर देंगे तो इतनी मजदूरी मिलेगी। अपने शास्त्रों

में मजदूरी के सम्बन्ध में भी वृहद् वर्णन मिलता है। वेतन समय पर मिलना चाहिए और वेतन न देने का कोई प्रावधान नहीं होना चाहिए, वेतन देर से भी नहीं दिया जाना चाहिए। वेतन का निर्धारण कैसे होना चाहिए इसका नारद स्मृति में बहुत अच्छा सिद्धान्त दिया हुआ है। योग्यता के आधार पर वेतन होना चाहिए और योग्यता है परन्तु मन लगाकर काम कर रहा है या नहीं इस पर वेतन तय होना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्थिक चिंतन के क्षेत्र में हमारी अस्मिता देश, काल, परिस्थिति के अनुसार एक प्रवाह के रूप में प्रवाहित होती चली आ रही है। युगों पूर्व से भारत में आर्थिक चिन्तन समग्रता एवं सूक्ष्मता के साथ होता चला आ रहा है।

*****

भारतीय पुरातात्विक अस्मिता

डॉ0 राकेश तिवारी[1]

मेरा विषय पुरातत्व से संबंधित है। मैं संस्कृति और दर्शन के गूढ़ परतों में जाने के बजाए स्वाभाविक रीति से पत्थरों, टूटे हुए बर्तनों और खंडहरों के आधार पर मेरी जो अवधारणा है उस पर ही सीमित रहूँगा। आज के विषय का जो बिन्दु पूरी तरह पुरातत्व से सीधे-सीधे जुड़ा है वह है सभ्यता का विकास, उद्‌भव और उसकी निरन्तरता। हमें सामान्य रूप से यह बताया जाता रहा है कि मानवीय सभ्यता का उद्‌भव अफ्रीका में हुआ और वहाँ से उनके रेले भारतीय उपमहाद्वीप में विभिन्न रास्तों से आये। यह भी कहा जाता है कि आधुनिक मानव सत्तर से अस्सी हजार वर्ष पूर्व अफ्रीका से भारत आया। फिर जब खेती किया जाने लगा तब यह माना जाने लगा कि मध्य एशिया में फर्टाइल लैंड से होती हुई गेहूँ और जौ की खेती भारत में आयी और धान की खेती पूर्वी एशिया से दक्षिण-पूर्व एशिया होती हुई भारत में आयी।

जब हड़प्पा सभ्यता का पता चला तो यह भी कहा जाने लगा कि शायद यह भी मध्य एशिया से आये। एक बार यह धारणा बहुत जोरों से चली, फिर कहा जाने लगा आर्य सेंट्रल एशिया से आये, उन्होंने हड़प्पा वालों को दक्षिण में धकेल दिया फिर उन्होंने उत्तरी भारत पर कब्जा कर लिया। फिर कहा जाने लगा कि गंगा घाटी में बड़े घने जंगल थे, दलदल थे और 7वीं शताब्दी ई.पू. में बड़े पैमाने पर मानव वहाँ निवास नहीं करते थे इनकी संख्या बहुत कम थी। पश्चिम भारत से कुछ लोग घोड़े और लोहे के साथ वहाँ गये। उन्होंने लोहे से जंगल को

[1] पूर्व महानिदेशक, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण

काटा और बड़ी संख्या में अपनी बसावट बसायी। यह भी हम लोगों को अवधारणा दी गयी कि हमारे यहाँ पर कई प्रकार के लोग रहते थे, कई प्रकार की सभ्यताएं थीं, जो आज भी कमोवेश रूप में चली आ रही हैं। यह भी कहा गया कि खेती करने वाले लोग और दलित एवं आदिवासी लोग जिनकी संस्कृति में ताल-मेल नहीं के बराबर था, वे शोषित थे।

यदि पुरातत्व की दृष्टि से समीक्षा की जाए तो भारतीय उपमहाद्वीप की जो तस्वीर उभर कर हमारे सामने आती है वह कुछ इस प्रकार है। आज की तारीख में हम सब जानते हैं कि लगभग 15 लाख वर्ष पूर्व मानवीय सभ्यता के प्रमाण यहाँ पर मिलते हैं। दक्षिण भारत में तमिलनाडु में अतिरपट्टम, मध्य प्रदेश में टिकोरा और बलवार, उत्तरी भारत में शिवालिक क्षेत्र में बहुत सी जगहों पर इस तरह के प्रमाण मिलने की बात की गई है। यदि इस पंद्रह लाख साल को देखें और इसका विभाजन करें तो 14 लाख 40 हजार वर्ष पूर्व की सभ्यताओं से जुड़ा है, जिन्हें हम आखेटक संग्रह युग में रख सकते हैं और उसके बाद का दस हजार वर्ष ही ऐसा बचता है जिसमें आप खेती से लेकर आज तक की बात करें। इसमें भी एक विविधता बहुत ही साफ दिखायी देती है कि भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न भौगोलिक और जलवायु विशिष्ट क्षेत्रों में आदमी रह रहा था और उनमें निरंतर विकास रहा। अफ्रीका से वो आये कि नहीं यह गुत्थी अभी चलती रहेगी पर दुनिया के बहुत से विद्वान यह भी मानते रहे हैं कि मानवीय सभ्यता का विकास अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग ढंग से हुआ और वे (Multi-Central Evolution) बहु-केन्द्रीय विकास की बात करते हैं। एक ही जगह उद्‌भव और विकास में विश्वास नहीं करते हैं।

यदि हम यह मान लें कि आधुनिक मानव जिसे वह होमो सेपियन्स नाम देते हैं उसकी बात करें तो वह 70-75 हजार साल से भारतीय उपमहाद्वीप में लगातार रह रहा है। इसमें किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं रह गया है। हड़प्पा संस्कृति के संबंध में अब यह कोई नहीं मानता है कि मध्य एशिया से लोग यहाँ आए और हड़प्पा संस्कृति का उससे विकास किया। इसी प्रकार अब यह कोई नहीं मानता कि सात-आठ हजार ई.पू. गेहूँ और जौ की खेती मध्य एशिया से यहाँ पर आयी या चीन से भांग की खेती का ज्ञान यहाँ पर आया।

हमारे अपने यहाँ पर यदि आप मेहरगढ़ की बात करें तो पश्चिमी भारतीय उपमहाद्वीप में और अगर मध्य गंगा घाटी बात करें तो कुल्डिहुवा, गघरा, झूँसी, लहुरादेवा आदि अनेक स्थानों से धान की खेती के प्रमाण मिल चुके हैं, जिन्हें छठीं-सातवीं शताब्दी ई.पू. रखा जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि दस हजार वर्ष पहले यहाँ पर आदमी ने स्थाई रूप से रहने की ओर कदम बढ़ाया और आठ हजार या दस हजार वर्ष पूर्व यहाँ जौ और धान की खेती का प्रारम्भ हो गया था और प्रारम्भिक गाँव बसने प्रारम्भ हो गये थे। अभी तक जो केवल शिकार के लिए साथ रहने वाले (Hunter Gatherer) लोग थे उनके साथ भोजन और उत्पादन करने वाले लोग आ गये या यह कह लीजिए कि खेतिहर और पशुपालन करने वाले लोग आ गये। इसमें जब और अधिक विकास हुआ तो इन्होंने धातु को गलाना सीखा और धातु को गलाने वाला एक नया समूह हो गया। इस प्रकार भारतीय उपमहाद्वीप में तीन प्रकार के समूह रहने लगे पहले खेती करने वाले, दूसरे शिकार करने वाले और तीसरे धातुकर्म मेटलर्जी वाले लोग। इन तीनों समूहों में तभी से पारस्परिक सम्बन्ध भी था, इनमें आदान-प्रदान भी था, क्योंकि जो धातु वे गला रहे थे उसकी आवश्यकता खेती करने वाले को और शिकार करने वाले को थी। ये ही लोग जब आगे बढ़कर तीन समूह बनते हैं तो उत्पादन बढ़ता है और उत्पादन के आदान-प्रदान के साथ व्यापार बढ़ता है और व्यापार बढ़ता है तो ये छोटे गाँव बड़े गाँव में और बड़े गाँव कस्बों में और कस्बे बड़े नगरों में बदल जाते हैं। इस प्रकार नगरीय सभ्यता का भारतीय उपमहाद्वीप में विकास होता है।

हम लोग गार्डेड चाइल्ड की परिभाषा सभी जगह नगरीय सभ्यता के लिए लागू कर देते हैं, लेकिन वह बड़ा न्याय पूर्ण नहीं है, क्योंकि किसी एक नगर में आप कल्पना कीजिए कि यदि कोई एक मकान बनाएगा तो किन चीजों से बनाएगा? यदि आसाम में बनाएगा तो बाँस से बनाएगा, वह पहाड़ पर मकान बनाएगा तो पत्थर, लकड़ी आदि से भी अपना मकान बनाएगा, यह जरूरी नहीं है कि वह पकी हुयी ईंटों से ही अपना मकान बनाएगा। यदि इस आधार पर इन सभ्यताओं की तुलना की जाने लगे तो न्याय पूर्ण नहीं होगा। निश्चय ही खेतिहरों के नगर और व्यापारियों के नगर में अन्तर होगा। कोई भी नगर बिना गाँव के

चल नहीं सकता, क्योंकि उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति गाँव से होगी, उसको सपोर्ट गाँव से मिलेगा। इसलिए किसी भी प्रकार की रहन-सहन की जो पद्धति विकसित होती है एक साथ चलती रही है और आज भी चल रही है।

एक बात और कहूँगा कि यह मत की सातवीं-आठवीं शताब्दी में लोग पश्चिम भारत से आकर गंगा घाटी के क्षेत्रों में जंगलों को साफ करके यहाँ पर बसे, यह भी स्थापित नहीं होती। गंगा घाटी में तीसरी सहस्राब्दी ई.पू. आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व से लोगों के रहने के सुनिश्चित प्रमाण मिल चुके हैं। चार हजार वर्ष पूर्व लोगों के आवास तो उत्खनन के आधार पर दर्जनों स्थानों से मिल चुके हैं, जो प्रमाणित करते हैं कि वहाँ पर बड़े-बड़े सेटलमेण्ट थे, बड़े-बड़े आवासीय केन्द्र थे, वे केवल छोटे-मोटे आवासीय केन्द्र ही नहीं थे, उनका पश्चिमी भारत से सम्बन्ध भी था, जिसके प्रमाण भी मिले हैं।

मध्य गंगा घाटी में आपको गेहूँ और जौ के अवशेष तीसरी सहस्राब्दी ई.पू. में ही मिलता है। वहाँ पर गेंद और मिट्टी के बर्तनों (Pottery) के अवशेष मिलते हैं। ऐसे अनेक अवशेष मिलते हैं जो हड़प्पा संस्कृति में प्रयोग हो रहे थे। इस प्रकार यह अवधारणा कि सब चीजें यहाँ पर बाहर से आईं या हमारे जो विकास का क्रम था उसमें कहीं अवरोध था, कम से कम पुरातत्ववेत्ता की दृष्टि से मुझे कहीं दिखाई नहीं देता। दस हजार वर्ष पूर्व न केवल उत्तर भारत के ऐसे क्षेत्र अपितु ऐसे क्षेत्र जो जंगलों और पहाड़ों में थे लद्दाख तक हमको वह प्रमाण मिल रहे हैं कि वहाँ पर भी मानवीय निवास थे।

अब बात कुछ ऐसी निरन्तरता पर जिनको आप भौतिक रूप से जानते हैं। आपके और हमारे घरों में आज भी अनेक ऐसी परम्परायें हैं जो पाषाण युग से आज तक जीवित हैं। शिल और लोढ़ा सभी जानते हैं, यह पाषाण युग से चला आ रहा है, लाखों वर्ष पुरानी परम्परा है। कुल्हाड़ी का प्रयोग चला आ रहा है, आप चाकू का प्रयोग करते हैं वे पत्थरों के बनते थे, आप जिस तवे का प्रयोग करते हैं यह सब उसी समय आ गये थे। जिस आग से आपने लोहा गलाया वह आग भी स्टोन एज की देन है। इसी प्रकार आपने जिन अनाजों को बोया या जिनका उत्पादन आपने सीखा उनके बारे में अच्छा ज्ञान उन शिकार करने वाले लोग (Hunter Gatherers) को भी हो चुका था तभी आप खेती करके उनको

उपजा सके। इसी प्रकार पूजा पद्धति का एक प्रमाण भारत में मध्य प्रदेश में एक जगह है बाडौर वहाँ से मिलता है, जिसे 17 हजार ई.पू. आका गया है। बाद में हड़प्पा संस्कृति में शिवलिंग व दूसरी चीजों के प्रमाण तो मिलते ही हैं। इसी प्रकार जब हम पहाड़ पर रहते थे उसे भी कभी नहीं भूले। हमारे आपके घर में जब विवाह होता है तब कोहबर बनता है वह भी पहाड़ का प्रतीक है। आप जब व्रत करते हैं खास तौर पर पूर्वी भारत में तब तिन्नी का चावल खाते हैं जो कि जंगली अनाज है। यह संस्कार उस समय के हैं जब मानव स्थायी नहीं हुए थे, जब वे गाँव या शहर में नहीं रहते थे। इस प्रकार बहुत से उदाहरण हैं। इस प्रकार के सभी परम्पराओं के जो भारतीय उपमहाद्वीप में थे आपस में सम्मिश्रण के प्रमाण भी मिलते हैं।

एक विवाह था हमारे परिचित के घर में, लड़के वाले पश्चिमी उत्तर प्रदेश के थे और लड़की वाले पूरब के थे। दोनों पक्ष के विवाह करा रहे पंडितों में एक बात को लेकर चर्चा हुई कि जो परछा जायेगा वह लावा धान का होगा या जौ का। दोनों के सम्मिश्रण के बावजूद दोनों की जो स्थिति है वह दोनों अलग-अलग भौगोलिक क्षेत्रों की है, दो अलग-अलग परम्पराओं की है। इसकी गहराई में हम लोग जाएँ तो इस पर हफ्तो चर्चा कर सकते हैं, लेकिन मैं केवल यहाँ कुछ उदाहरण दे रहा हूँ।

वह सभी परम्पराएँ चाहे वह आदिवासियों की हों या शिकार करने वाले लोगों (Hunter Gatheres) की हों या खेतिहर की हों, व्यापारियों की हों, धातु गलाने वालों की हों उन सब को हम मिला दें तो हमारा आज का समाज बनता है। हमारी यह निरन्तरता पाषाण युग से चली आ रही है आगे भी चलेगी। यहाँ से अवश्य बहुत से लोग बाहर गये होंगे और बहुत से आये भी होंगे, लेकिन जो हमारा मूल है वह यहीं का है। लगभग 15 लाख वर्षों की बात हम लोग जान ही चुके हैं, वह निरन्तरता आज तक चल रही है और आगे भी चलेगी। हम बहुत अधिक विषय के विस्तार में न जाकर यही कहेंगे कि हमारी संस्कृति का जो स्वरूप आज दिख रहा है इसमें हमारे भारतीय उपमहाद्वीप के सभी क्षेत्रों के, सभी वर्गों के, सभी जगहों की अपनी-अपनी अवधारणा, अपने दर्शन सबका समुच्चय है, सबका समन्वय है।

*****

भारतीय अस्मिता के आधारभूत तत्त्व

डॉ0 महेश चन्द्र शर्मा[1]

जब भी भारतीय संस्कृति की बात करते हैं तब हम लोग ऐसा था इसकी चर्चा करते हैं। यदि ऐसा था तो प्रश्न उठता है कि यह है कि अब नहीं है? यदि ऐसा था तो इसका अर्थ यह होगा कि निरन्तरता अब नहीं है, लेकिन यह जो संगोष्ठी है यह स्वयं भारतीय अस्मिता की निरन्तरता की परिचायक है। हम थे नहीं, हम हैं। हम थे नहीं, हम हैं का मतलब क्या है? किसी भी समाज की निरन्तरता आखिर बनी कैसे रहती है? यथा स्थिति में निरन्तरता हो ही नहीं सकती। अभी हमारा जो शरीर है वह दूसरे क्षण में वैसा नहीं है। यथा स्थिति कभी निरन्तर नहीं होती, इसलिए निरन्तरता के लिए जरूरी है गतिशीलता। जिस समाज में गतिशीलता होती है, वह समाज निरन्तर रहता है और यदि गतिशीलता आहत हो जाती है तो समाज तिरोहित हो जाता है। बड़ा विख्यात शेर है अल्लामा इक़बाल का ''यूनान मिस्र रोमा सब मिट गये जहाँ से, कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।'' यूनान कहाँ चला गया? यूनान तो वहीं है, लोक की परंपरा भी वही है, मृत्यु निरंतर जन्म भी निरन्तर है फिर मिट कैसे गये? ये जो नाम लिए हैं इकबाल ने ये मिट इस माने में गए कि भूमि की निरन्तरता होते हुए, जन की निरन्तरता के होते हुए भी, जन के भीतर जो संस्कार, संस्कृति है उसमें निरन्तरता नहीं रही।

आज का यूनानी अपने को अरस्तु और प्लेटो का वंशज कहकर गौरवान्वित नहीं होता। आज का मिस्र अपने उन वैज्ञानिकों जिन्होंने पिरामिड और

---

[1]पूर्व राज्यसभा सदस्य एवं अध्यक्ष, एकात्म मानव दर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान

ममियाँ बनायीं थी उन पर गौरवान्वित नहीं होता। आज का यूरोप भी क्रिश्चियनिटी के पूर्व के यूरोप को नहीं जानता। एशिया के अनेक देश अपने अतीत को भूल गये। यह जो अपने अतीत को भूल जाना है अपने अतीत से कट जाना है, यह निरन्तरता को आहत करने वाली चीज है। भारत में ऐसा कभी नहीं हुआ, आज भी नहीं है, लेकिन ऐसी कोई गतिशीलता नहीं होती जिसे कोई अवरोध न प्राप्त हो। हर गति को रोकने के लिए कोई न कोई अवरोध उत्पन्न होते हैं, लेकिन जो इन अवरोधों को पार करने की कला सीख लेता है वह अपनी निरन्तरता को अजर-अमर बना लेता है।

भारत के ऋषियों ने कहा ''वयं अमृतस्य पुत्राः''। हम अमृत के पुत्र हैं, हम कभी खत्म नहीं होंगे। क्यों नहीं होंगे? कौन सा अमृत है भारत में? हमारे यहाँ वैदिक ज्ञान की चर्चा होती है, होनी भी चाहिए। वैदिक ज्ञान यह कभी नहीं कहता कि मैं आपको अंतिम और पूर्ण सत्य बताता हूँ। वैदिक ज्ञान कहता है मैंने आज तक जो जाना वह मैं आपको बताता हूँ और अन्त में कहता है नेति-नेति, न-इति न-इति। यही वह अमृत तत्व है जिस तत्व ने भारत की अमरता को संजोया है। यहाँ कि हर पीढ़ी, यहाँ का हर विद्वान कहता है 'नेति' (इतना ही नहीं)। दूसरा हमारे यहाँ कुछ ऐसी अच्छाइयाँ हैं जिन अच्छाइयों को हम नहीं जानते। अच्छाइयों को जानना भी खतरनाक होता है। अच्छाई जान जाओ तो उनके मिटने की संभावनायें शुरू हो जाती है। जैसे जब दुनिया से तुलना करते हैं तो भारत बड़ा सहिष्णु देश है ऐसा बोलते हैं, क्योंकि अब परसिया में पारसी नहीं हैं, लेकिन भारत में पारसी हैं। ईसामसीह के साथ उनके देश के लोगों ने क्या किया और भगवान बुद्ध के साथ हमने क्या किया, दोनों में कितना अंतर है।

स्वामी विवेकानंद जी कहते थे आप भारत के आम आदमी से पूछिये कि आपने पारसियों पर कोई एहसान किया है कभी? उसका उत्तर होगा हमने ऐसा कुछ नहीं किया। पारसी ईरान से भागे और भागकर यहाँ आये और रहने लगे। हमने कुछ नहीं किया। हमने पारसी पर कोई एहसान नहीं किया। उनका अपना कोई तौर-तरीका था वे अपने-तरीके से रहते थे और हम अपने तौर-तरीके से रहते थे। आपने कुछ किया नहीं, लेकिन विश्व के मंच पर भारत की महानता सिद्ध हो गई। आप ने कुछ किया नहीं तो भी हुआ, जिसको दीनदयाल जी ने कहा है

यह भारत की चिति है। इसके कारण से हम अमर और निरन्तर हैं।

पूजनीय श्री गुरु जी कहा करते थे कि जो भारतीय संस्कृति के बारे में कम जानते हैं उनका आरोप है कि भारतीय संस्कृति सहिष्णु है। सहिष्णुता कोई ऐसा गुण नहीं है जिसका लम्बा चौड़ा वर्णन किया जाये, क्योंकि सहिष्णुता असहिष्णुता की तुलना में गुण है, वैसे उसमें कोई अच्छाई अपने आप में नहीं है। क्यों नहीं है? सहिष्णुता का अर्थ है मैं सहता हूँ। आप सहते किसको हैं? आप सहते उसको हैं जिसको आप गलत मानते हैं। आप सहते उसको हैं जो आपके लिए दुःखदायी है, पीड़ादायी है। पीड़ा को सहा जाता है, दुःख को सहा जाता है। आखिर कोई कितना सहिष्णु हो सकता है कभी न कभी तो पीड़ा तो बढ़ेगी और आप आवेश में हो जायेंगे। श्री गुरुजी ने कहा कि भारत की संस्कृति की महानता सहिष्णुता नहीं है, भारत की विशेषता स्वागतशीलता है। वह कैसी है? उत्तर भारत में इस्लाम तलवार के बल पर आया वह आक्रमणकारी है, लेकिन दक्षिण भारत में, केरल में भारतीय स्वयं उसे जाकर लेकर आये। पता चला कि अरब देश में कोई मोहम्मद साहब नाम का आदमी कोई नयी बातें बोलता है। लोगों ने कहा चलो भाई नयी बातें देखकर आते हैं और नयी बातें सीखकर आ गये, यहाँ पर उसकी प्रैक्टिस शुरू कर दी। एक सहज स्वभाव कि कुछ नया दिखा तो उसको जिज्ञासा पूर्वक देखा। दूसरे लोगों का स्वभाव है कि कुछ नया दिखा उसको बुराई के रूप में देखा, कुछ नया दिखा तो उसको दुश्मन के रूप में देखा। परिणाम क्या हुआ? देखते ही नये के साथ लड़ाई शुरू। भारत ने जो नया दिखा उसको जिज्ञासा के रूप में देखा, उन्होंने जो नया देखा उसको दुश्मन के रूप में देखा, यह अंतर है।

आपने पढ़ा होगा कि वास्कोडिगामा भारत आया। उसकी अपनी चिति है, वह यह है कि नये को देखेंगे तो दुश्मन मानेंगे। उसने देखा कि भारत के नाविक दूर से दिख रहे हैं। वह सावधान हो गया और शस्त्र सम्भाल लिया कि मुझ पर आक्रमण करेंगे। भारत के नाविकों ने देखा कि कोई नयी चीज आ रही है चलो भाई देखते हैं। नया है अतिथि है, चलो उसका स्वागत करते हैं। भारत के नाविक वास्कोडिगामा का स्वागत करने चले तो वास्कोडिगामा उन पर आक्रमण करने लगा। तब इन भारतीयों की समझ में नहीं आया कि ये ऐसा क्यों

कर रहा है। कोई नया आदमी हमारे यहाँ आया है 'अतिथि देवो भव' की भावना से स्वागत कर रहे हैं इसको लड़ने की क्या जरूरत है? लेकिन वह सोच रहा है कि ये मुझे आने नहीं देंगे इनका अपना देश है इसलिये लड़ाई करेंगे मुझसे। यह दो समाजों की अलग-अलग चिति है, यह चितियों का अन्तर है। भारत में जो चिति है वह यह है कि नये को जिज्ञासा के रूप में देखो उसका परिणाम यह हुआ कि विश्व में जितने सम्प्रदाय कहीं नहीं हैं उतने अकेले भारत में हैं। विश्व के मसीहा, गुरु, जगद्गुरु, भगवान जो कहीं नहीं हैं वह इस भारत में हैं और आज तक पैदा हो रहे हैं। क्यों पैदा होते हैं? हम क्या करते हैं? हम कुछ नहीं करते हैं वे पैदा होते हैं, उनका पैदा होना स्वाभाविक है। हम उसे स्वाभाविक मानते हैं। हम यह मानते हैं कि यदि वे मेरी नहीं मानता तो न माने, इसमें लड़ाई की क्या जरूरत है।

पूज्य गुरुजी कहते थे कि असहमतियों के प्रति व्यवहार क्या होना चाहिए, यह भारत के स्वभाव में है। व्यवहार यह है कि 'हे असहमत! सत्य को तुम जिस प्रकार देख रहे हो वैसा मैं नहीं देखता और सत्य को जैसा मैं देख पा रहा हूँ वैसा तुम नहीं देख पा रहे हो, लेकिन कोई कारण नहीं कि तुम मुझसे असत्य बोलो और कोई कारण नहीं कि मैं तुमसे असत्य बोलूँ। तो क्या करें फिर? आओ वाद करो, संवाद करो 'वादे-वादे जायते तत्वबोधः' ये जो अनेक दृष्टिकोण (Point of View) उसमें आपका स्टैण्ड क्या है? उससे आपका दृष्टिकोण (Point of View) तय होता है। मुझसे आपका प्वाइण्ट ऑफ व्यू अलग है इसका मतलब आप मेरे विरोधी हैं ऐसा नहीं है। हम अपने-अपने स्टैण्ड को समझेंगे तो ध्यान में आ जायेगा कि सच क्या है।

हमारे यहाँ भी ऐसा हुआ जो-जो बीतता गया विद्वान लोगों ने साहित्य रच डाला, पुस्तकें रच डाली शास्त्र बन गये। शास्त्र बन गये तो शास्त्री बन गये। शास्त्री बन गये तो शास्त्र प्रमाण की बात करने लगे। हमारे यहाँ शास्त्र प्रमाण की बात करने वाले लोग कम नहीं रहे, लेकिन शास्त्र को चुनौती देने वाले भी कम नहीं रहे। कबीरदास अनपढ़ थे, वे तो शास्त्र जानते नहीं थे। जब किसी ने कहा कि जो कबीरदास कहते हैं वह शास्त्रानुकूल नहीं है। तब कबीर दास ने कहा- ''तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखन की देखी।'' जो मैं अनुभव करता हूँ

वही मैं कहता हूँ, सत्य वही है। क्या शास्त्रियों ने कबीर को दण्डित किया? नहीं, उन्होंने कहा कबीर सच्चा आदमी है, उसे जो लगता है वो कहता है।

भारत की निरन्तरता का सूत्र आज भी टूटा नहीं है। यह सूत्र आज भी बरकरार है और उसी का परिणाम है कि विश्व चमत्कृत है। विश्व के हिसाब से भारत में डेमोक्रेसी नहीं होनी चाहिए। उनको आश्चर्य होता है इतनी भाषाएँ, इतनी भूषाएँ फिर भारत में डेमोक्रेसी कैसे है। वे मानते हैं- "India is a plural society" (भारत बहु सामाजिक है)। उन्हें आश्चर्य होता है कि प्लूरल इण्डिया में एकात्म लोकतंत्र कैसे चल रहा है। यह विश्व के इतिहास का मानक है, दुनिया में कहीं होगा पता नहीं लेकिन भारत में 24-24 दलों की एक सरकार हो सकती है। ये भारत की निरन्तरता का परिचायक है। भारत आज भी भारत है।

यह संगोष्ठी हम किसलिए करते हैं? संगोष्ठी हम इसलिए करते हैं कि हमको ध्यान में आता है हमारी गतिशीलता में कुछ रुकावट आयी है क्या। जब-जब भारत यह महसूस करता है कि मेरी चरैवेति-चरैवेति में, मेरी गतिशीलता में रुकावट आ रही है तब-तब वो ऐसी संगोष्ठियाँ, ऐसे उपवेशन करने लगता है। उपनिषदों की यह प्राचीन परम्परा है जब भी किसी प्रकार का अवरोध दिखाई देता है वह कुछ न कुछ नया रास्ता निकाल लेता है। हर बीता हुआ युग एक कॉमा में आगे बढ़ जाता है और नया वाक्य शुरू हो जाता है। उसका भी अन्त नहीं होता, आने वाला युग उसको भी एक कॉमा लगा देता है। भारत का यह वाक्य कभी पूरा नहीं होगा, यह ऐसे ही आगे बढ़ता चला जायेगा। पर आज यह क्यों महसूस होता है कि हमारी गतिशीलता में कुछ अंतर पड़ गया है, लड़खड़ाहट आ गयी। यह इसलिए महसूस होता है, क्योंकि यूरोप जो अपना अतीत नहीं जानता, वह हमारी गति को अवरुद्ध करता है।

यूरोप ने अपना अतीत खो दिया और जिसको खो दिया है उसके विषय में यह भी नहीं जानता कि वह अच्छा था या बुरा था। हमको लगता है कि उसने थेओक्रेसी को समाप्त कर दिया और सेकुलरिज्म को स्वीकार कर लिया, परन्तु यदि ऐसा है तो वैटिकन सिटी में थेओक्रेसी आज भी क्यों चल रही है? यूरोप न चाहे तो चल सकती है क्या? क्या अकेला वैटिकन सिटी यूरोप के चाहे बिना ऐसा कर सकता है? असंभव है, वह नहीं कर सकता। विश्व में एक ऐसी स्थिति

आ गयी यूरोप की, जिसके कारण उसने विश्वभर में साम्राज्य स्थापित किया। अब ये साम्राज्य स्थापना यूरोप का गौरव है या यूरोप का कलंक है? एशिया, अफ्रीका, अमेरिका और आस्ट्रेलिया में जो उन्होंने किया उसे वह स्वयं तय नहीं कर पा रहे हैं कि यह उनके गौरव की कहानी है या कलंक की। यह निश्चय ही उनके कलंक की कहानी है। मानवता का इतना नुकसान किसी भी खण्ड ने कभी भी नहीं किया। आजकल हमारे यहाँ भू-माफिया शब्द चलता है विश्व के इतिहास का सबसे बड़ा भू-माफिया यूरोप है।

आप कल्पना कीजिए कि आज धरती पर जितने यूरोपियन्स हैं वे यदि यूरोप में होते तो क्या होता? आज यूरोप के पास अमेरिका महाद्वीप है, आस्ट्रेलिया महाद्वीप है, दक्षिण अफ्रीका है। इतने व्यापक भू-खण्ड पर जो काबिज है, वो क्या वैसे ही काबिज है जैसे तिब्बत और थाईलैंड भारत में काबिज है? आज भी भारत तिब्बत पर काबिज है। तिब्बत के लोग कहते हैं कि भारत हमारा गुरु है। थाईलैण्ड में जायेंगे तो आज भी अपने राजा को राम कहते हैं। बाली में जायेंगे वह एक मुस्लिम देश है फिर भी वहाँ भी लोग रामायण-महाभारत को आदर की दृष्टि से देखते हैं। तो क्या जो स्थिति भारत की पूर्वी एशिया में है वही स्थिति यूरोप की अमेरिका, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका में है? जो वहाँ के जन हैं वे उनको दुश्मन मानते हैं। अभी पचास साल पहले अमेरिका ने कोशिश की थी कि कोलम्बस की यात्रा के पाँच सौवें वर्ष को मनाया जाए। अमेरिका के पास बहुत ताकत और दौलत है, सत्ता उसके पास है, लेकिन जो थोड़े बचे हुए रेड इण्डियन्स, मूल अमेरिकन हैं उन्होंने मजबूर कर दिया कि वे कहीं भी कोलम्बस की यात्रा की 500वीं जयन्ती को मना नहीं सके। कोलम्बस कितना बुरा आदमी था लोगों को मालूम ही नहीं था, लेकिन इतना साहित्य रचना कर दिया कि यह सब को पता चल गया। आज वही यूरोप हमारे सर पर चढ़कर बोलता है।

यूरोप हमारी गति को अवरुद्ध करता है। कैसे अवरुद्ध करता है? मैं महेश चन्द्र शर्मा महर्षि भरद्वाज का वंशज हूँ, मेरे पूर्वजों ने, मेरे पुरखों ने, जो ज्ञान अर्जित किया वह मेरे पास सहज ही होना चाहिए था। मेरी माँ निरक्षरा थी। उस निरक्षरा माँ के पास जो ज्ञान था वह तो सहज मुझे मिल जाना चाहिए था, परन्तु वह क्या कारण हुआ कि मैं अपनी पी-एच.डी. करते-करते अपने माँ-बाप

के ज्ञान से कटने लगा। मैं नहीं जानता कि आज क्या तिथि है, मैं तारीख जानता हूँ। मैंने अपनी माँ के भजनों से जितने भारत के नायकों को जाना था वे ध्रुव, प्रहलाद, हरिश्चन्द्र मेरे पाठ्यक्रम में नहीं थे। पाठ्यक्रम में क्या पढ़ा, क्या मैंने जाना? मैं राजनीति विज्ञान का विद्यार्थी हूँ। मैंने पढ़ा कि राजनीति विज्ञान का जनक अरस्तु है और सवाल था कि सिद्ध करो कि राजनीति विज्ञान का जनक अरस्तु था। सच क्या है इसके लिए बहुत बड़े अध्ययन की जरूरत नहीं है, ज्यादा विद्वता की जरूरत नहीं है, सामान्य ज्ञान की जरूरत है। अरस्तु का चेला सिकन्दर था जिसने भारत पर आक्रमण किया था और उस आक्रमण का प्रतिकार करने वाला, सबसे पहले राजनीतिक भारत को संगठित करने वाला एक महापुरुष चाणक्य पैदा हुआ। उसने तत्कालीन परिस्थितियों एवं राजानीति पर एक ग्रन्थ लिखा अर्थशास्त्र। उसका चेला चन्द्रगुप्त था। अरस्तु और चाणक्य लगभग समकालीन थे। चाणक्य और अरस्तु समकालीन थे तो राजनीति का जनक अकेला अरस्तु कैसे हो गया? कम से कम चाणक्य का नाम तो लिखो। चाणक्य कहते हैं कि मैं कोई नई बात नहीं कह रहा हूँ, मैंने अपनी पूर्व परम्परा से ही ज्ञान अर्जित किया है। इस सच को भुलाकर 2017 में भारत के विश्वविद्यालय में विद्यार्थी पढ़ने को मजबूर हैं कि राजनीति विज्ञान का जनक अरस्तु है। अर्थशास्त्र का जनक एडम स्मिथ है।

पाश्चात्य परिभाषाओं को रट-रट कर मैंने अपनी डिग्री प्राप्त की है। मैंने राजनीति शास्त्र में किया, किसी ने भौतिक शास्त्र में किया होगा तो किसी ने समाज शास्त्र में किया होगा, लेकिन हम सब ने यही किया है। इसे ही कहते हैं गत्यावरोध। ये हमारी गति को अवरुद्ध कर रहा है। यह हमें भारत की परम्परा से काट रहा है, निरन्तरता को आहत कर रहा है, इसलिए हम संगोष्ठी करते हैं और इससे अपने मस्तिष्क का अनौपनिवेशिकरण करते हैं (Decolonization of Our Mind)। इस उपनिवेश का क्या परिणाम हो रहा है मैं इसका उदाहरण देता हूँ। जब मैं एम.ए. कर रहा था तो हमारे पाठ्यक्रम में एक चैप्टर था 'द प्रॉब्लम ऑफ मिडिल ईस्ट'। मैंने गुरु जी से पूछा कि ये मिडिल ईस्ट कहाँ है? तब सब मुझ पर हँसने लगे कि ये एम.ए. कर रहा है और इसे मिडिल ईस्ट नहीं पता है। वे बोले अरब और इजराइल। तब मैंने कहा कि नक्शा मँगा कर देखिए,

क्या अरब और इजराइल मिडिल ईस्ट में है? वे तो पश्चिम एशिया में हैं। वे न तो मिडिल में हैं और न ईस्ट में हैं। गुरु जी बोले गलती कर रहे हो तुम। मैंने पूछा क्या गलती कर रहा हूँ? उन्होंने कहा भारत में नहीं यूरोप के मानचित्र में बैठ कर देखो। जब तुम यूरोप के मानचित्र में देखोगे तब ये तुमको मध्य-पूर्व दिखाई देगा और तब तुमको जापान और फार ईस्ट लगेगा, भारत में बैठे-बैठे नहीं लगेगा। यह क्या है? यह मेरे मस्तिष्क का व्यवस्थापूर्वक उपनिवेशीकरण है। इससे लड़ना है और ये लड़ाई भारत अपने जीवन काल से लड़ते आया है। इस लड़ाई की निरन्तरता ही भारत की अमरता का रहस्य है। जब-जब असत्य ने चुनौती दी, जब-जब विकास ने चुनौती दी, तब-तब कोई न कोई शंकराचार्य, कोई न कोई गौतमबुद्ध, कोई न कोई हेडगेवार, कोई न कोई गाँधी, कोई न कोई दीनदयाल, कोई न कोई विवेकानन्द पैदा होते रहे, आगे भी पैदा होते रहेंगे।

*****

भारतीय अस्मिता और गाय

डॉ0 रामस्वरूप सिंह चौहान[1]

गाय को भारतीय संस्कृति में माता कहते हैं। माता ऐसे नहीं कह देते हैं कुछ न कुछ तो कारण है। मैं इसी विषय को लेकर शोध प्रारम्भ किया था। गाय से हमें मुख्य रूप से पाँच चीजें मिलती हैं, जिसे हम पंचगव्य कहते हैं। ये पाँच चीजें हैं दूध, दही, घी जिन्हें हम सुबह चाय, कॉफी, नाश्ते से लेकर शाम तक खूब पीते हैं और बच्चों को भी पिलाते हैं। अब इनके अलावा गो-मूत्र और गोबर ये दो घटक हैं पंचगव्य के जो हमें गाय से प्राप्त होते हैं। एक निश्चित अनुपात में इन सभी को मिलाकर पंचगव्य बनता है। अकेले-अकेले भी उपयोग होता है और मिलाकर भी उपयोग होता है। आयुर्वेद में उसका बहुत विस्तृत वर्णन है। पंचगव्य चिकित्सा का बहुत प्राचीन इतिहास है, जिसे आधुनिक चिकित्सा पद्धति में गो-चिकित्सा (Cow Pathy) नाम भी दिया गया है।

अब तक मैं गो-मूत्र को लेकर बीस-पचीस परीक्षण कर चुका हूँ। इस पर मैं मोटी-मोटी बात आपको बताना चाहूँगा। दिल्ली में ऐसी गौशालाएँ हैं जिनका दूध आप लोग लेते होंगे जैसे- मदर डेरी या अन्य कहीं का दूध आपको बीस रुपये, चालीस रुपये, पचास रुपये लीटर मिलते होंगे। देशी गाय का दूध एक सौ पचास रुपये लीटर एक सज्जन यहाँ बेचते हैं। उनके यहाँ लाइन लगती है। यदि किसी को लेना हो तो उनके यहाँ नम्बर लगाना पड़ता है। उसी गाय का गो-मूत्र 1000 रुपये लीटर वे बेचते हैं। बाकी जगह 5 रुपये ली. से लेकर 1000 रुपये ली. तक गो-मूत्र बिकता है और आयुर्वेद चिकित्सा में विभिन्न रूपों

[1]वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं प्रोफेसर, गोविन्द वल्लभ पन्त कृषि विश्वविद्यालय, पंतनगर

में प्रयोग हो रहा है। कैसे-कैसे प्रयोग हो रहा है यह मैं बताऊँगा।

मैंने आपको भूमिका बताई गाय के उपयोगिता की। वह भी कौन सी गाय की? अपनी देशी गाय। गाय के हम लोगों ने विदेशी नस्ल मँगाकर क्रास ब्रीडिंग संकरीकरण कर दिया। शंकर गाय या विदेशी मूल की गाय या भैंस या किसी अन्य पशु का मूत्र उतना उपयोगी नहीं है, जितना देशी गाय का गो-मूत्र उपयोगी है। यह निष्कर्ष प्रयोगों द्वारा प्राप्त हुआ है। हम लोगों ने देखा कि गो-मूत्र शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता (Immunity) को बढ़ाता है। यदि आपके शरीर की रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ गई तो कोई रोग होगा नहीं, यदि कहीं कोई रोग हुआ तो हल्का हो के रह जायेगा।

पंचगव्य देशी गाय का ही क्यों और किसी अन्य गाय का क्यों नहीं? हमने इसका भी परीक्षण किया। उसमें पता चला कि देशी का ही मूत्र उपयोगी है बाकी का नहीं। फिर ये हुआ कि देशी गाय जो घर पर रखें तब ज्यादा उपयोगी है या चरने जायेगी तब ज्यादा उपयोगी है तो उसमें भी चरने वाली का अधिक उपयोगी है। वह देशी गाय जो चरने जाती है उसका थोड़ा सा अवश्य ज्यादा असर है अन्यथा जो घर पर बँधी रहती है उसका भी असर है। अगर वह दूध नहीं भी दे रही है तो भी गऊ इतनी ही उपयोगी है।

नागपुर में देवलापार गोशाला में गो-विज्ञान अनुसंधान केन्द्र है। मैं जो भी अनुसंधान करता हूँ वहाँ से पूरे देश की गोशालाओं में उन प्रयोगों को पहुँचाते हैं। देशी गाय की हमारे यहाँ चालीस नस्लें हैं, जिनको अब विज्ञान भी मान गया है। उनमें चार-पाँच नस्लें अभी हमने वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित कराई हैं। इन 40 नस्लों का गो-मूत्र कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में टेस्ट हुआ है। चार-पाँच का तो मैं ही कर चुका हूँ। उसका गो-मूत्र और गोबर केवल अपना ही नहीं पालक के परिवार का भी लालन-पालन कर सकता है। अब तो प्रयोगों से सिद्ध हो गया है कि एक गाय से एक एकड़ जमीन की खेती के लिए बायो-फर्टिलाइजर और बायो-पेस्टीसाइड यानी खेती के लिए जो भी जरूरत की चीजें होती है वह उससे प्राप्त हो जाती हैं। जितना पैसा खर्च होता वह दे देती है इसलिए गाय भार नहीं है गाय माता है।

एक प्रयोग में बकरी के मांस, मुर्गी के मांस ऐसे विभिन्न पशुओं के मांसों

का अध्ययन किया गया कि खेती में जो कीटनाशक और फर्टिलाइजर प्रयोग हो रहे हैं इनमें इनके कितने अवशेष आते हैं। इस प्रयोग में पाया गया कि सबसे ज्यादा अवशेष देशी गाय के मांस में पाया जाता है। उससे कम भैंस के, उससे कम मुर्गी के, उससे कम बकरी के, लेकिन गाय के मांस में जहरीले पदार्थ सबसे ज्यादा पाए जाते हैं, परन्तु देशी गाय के दूध में, मूत्र में अवशेष नहीं जाते हैं। बचपन में हम सभी ने अनुभव किया होगा कि परिवार में हमारी माँ अच्छी-अच्छी चीजें खाने के लिए लाकर देती थी। यदि रोटी ठण्डी हो गयी तो उसे अपने लिए रख लेती थी और हमें गरम वाली लाकर देती थी यानी माँ अच्छी चीजें अपने बच्चों को देती है और खराब चीजें अपने पास रख लेती है। इसी प्रकार हमारी देशी गाय सारे टाक्सिन जहर (पॉयजन) अपने शरीर में रख लेती है और हमें जो दूध, गोमूत्र देती है उसमें उसके अवशेष नहीं जाते हैं। वह हमें शुद्ध रूप में मिलता है, फिल्टर होकर मिलता है। इसीलिए हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने हमारे प्राचीन सभ्यता में गाय को गो-माता कहा है।

गो-मूत्र से बड़ी महौषधि कोई नहीं है। छः हजार से ज्यादा कैंसर के रोगी हमारे नागपुर अनुसन्धान केंद्र ने ठीक किए हैं। हमारे तमाम वैज्ञानिक और डॉक्टर इस काम में लगे हैं। विभिन्न प्रकार के शोध कर रहे हैं। मेरा शोध भी है जिसमें कैंसर को ठीक करने में गो-मूत्र बहुत प्रभावी है। एक तो जैसा मैंने बताया था देशी गाय का गो-मूत्र पहले ही रोगों से लड़ने की क्षमता बढ़ा देता है। दूसरा शरीर में कोई दूसरी प्रक्रियाएँ जो हो रही हैं उनकी एक्टिविटी को बढ़ा देता है। अब तक छः यू.एस. पेटेंट हमारे पास है। एक यू.एस. पेटेंट क्षय रोग पर है। टी.बी. की बीमारी में करीब चार प्रकार के एण्टीबायोटिक दिये जाते हैं। इनको आम-तौर पर नौ से दस महीने तक लेना होता है। हमारा पेटेंट यह है कि यदि गो-मूत्र के साथ टी.बी. की दवाएँ ली जाएं तो दवा की मात्रा आधी और अवधि (ड्यूरेशन) एक-तिहाई रह जाती है यानी रोग तीन माह में पूरी तरह से ठीक हो जाता है। गो-मूत्र एंटीबायोटिक को बैक्टीरिया मारने में ज्यादा शक्तिशाली बना देता है।

शरीर में ब्लड टेस्ट में TLC, DLC कराते हैं। उसमें एक कोशिका न्यूट्रोफाइल्स होती है, दूसरी कोशिका मोनोसाइट्स होती है। इनका कार्य यह है

कि जैसे ही शरीर में बैक्टीरिया का इन्फेक्शन होता है वे खाकर खत्म कर देती हैं। आजकल प्रदूषित वातावरण में टॉक्सिन्स, कीटनाशक (Pesticide), भारी तत्व (Havy Metals) खाने-पीने की चीजों में आ रहे हैं। इससे हमारे शरीर की रोगों से लड़ने की क्षमता काफी कम हो गयी है। फलस्वरूप छोटा-सा कोई इन्फेक्शन होता है तो हम बीमार पड़ जाते हैं। कई बार अनुभव किया होगा कि हमने एण्टीबायोटिक दवाएँ लीं ठीक हो गये और जैसे ही दवाएँ लेनी बन्द कर दी फिर एक हफ्ते बाद बीमार पड़ गये। एक और परिस्थिति देखी होगी कि हमारे दादा जी बहुत ताकतवर थे, उनसे कम ताकतवर मेरे पिता जी थे। जितना काम मेरे पिता जी कर लेते थे उतना मैं नहीं कर पाता और जितना मैं कर लेता हूँ उससे कमजोर मेरा बच्चा है। यानी निरंतर पीढ़ी दर पीढ़ी जो बॉडी की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम से कमतर होती चली जा रही है इसका मुख्य कारण हमने जो कीटनाशक, कीटनियंत्रक और फर्टिलाइजर खेती में प्रयोग किए और आम तौर पर घरों पर प्रयोग किए जैसे- बिना गुड-नाइट के हमलोग सोते नहीं हैं। इन सबके प्रयोग के कारण इतने सारे केमिकल हमारे खाने-पीने की चीजों और इन्वायरमेण्ट में आ गये हैं जिनसे रोगों से लड़ने की ताकत कम हो गई और शरीर की ताकत कम हो गई। गो-मूत्र शरीर की ताकत को बढ़ाता है।

मैं पंत नगर विश्वविद्यालय से अध्ययन करने के बाद सबसे पहले हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय में नियुक्त हुआ। आपको बताना चाहता हूँ कि कैसे गाँव से निकला हुआ बच्चा मैं वहाँ से आइडिया लिया और कैसे मैंने रिसर्च की और जिस निरन्तरता की बात हो रही है वह क्यों जरूरी है। हमें निरन्तरता की तरफ क्यों आना पड़ रहा है? हमारी मजबूरी है। जब मैंने वहाँ पर सर्विस ज्वाइन की तब मैं पशु रोग परीक्षण (Animal Deases Investigation) में था। वहाँ जिले में ऊँट और भैंस पिछली टाँग से लंगड़ा कर चलने लगे। एक-एक गाँव में करीब तीस-तीस, चालीस-चालीस पशु ऐसे लंगड़ाकर चल रहे थे। बीमारी की सूचना हुई, हम लोग गये, परीक्षण किया। जो हमारे पास संसाधन थे उनसे पता करने का प्रयास किया, परन्तु पता नहीं चला कि बीमारी क्या है। आई.वी.आर.आई. से भी वैज्ञानिक बुलाए गए। करीब डेढ़-दो महीने कार्य चला परन्तु उसमें यह पता नहीं चल पाया कि बीमारी क्या है। कोई बैक्टीरिया नहीं, कोई वायरस नहीं।

कहाँ से आ गई, कैसे आ गई यह बीमारी? उनके ब्लड सैम्पल रखे थे। मैंने उत्सुकतावश ब्लड सैम्पल टेस्ट करने शुरू किये तो पता चला कि उनमें फॉस्फोरस की कमी है। हमने अपने हेड साहब को बताया कि इनमें फॉस्फोरस की कमी है क्या इनको फॉस्फोरस देकर ठीक किया जा सकता है? उन्होंने कहा जब इतने बड़े वैज्ञानिक सही नहीं कर पाये तो कैसे होगा? अन्ततः हमने फॉस्फोरस देना प्रारम्भ किया। पहली डोज 50 ग्राम की जैसे ही दी गई उनका लंगड़ाना बंद हो गया। जो डॉक्टर उपचार कर रहे थे वे बार-बार दौड़ कर आने लगे कि डॉक्टर साहब और दवा दे दो यह तो रामबाण इलाज करती है अभी दिया नहीं कि तुरन्त ठीक।

जब हमने पता किया कि आखिर ऐसा होता क्यों है तब पता चला कि हरितक्रांति के फलस्वरूप यूरिया खाद का प्रयोग हुआ। यूरिया में नाइट्रोजन होती है। ज्यादा नाइट्रोजन का प्रयोग हुआ तो जमीन में फॉस्फोरस की कमी हो गई और जब जमीन में कमी हुई तो चारे-दाने में आयी और चारे-दाने में आयी तो पशु में आयी। उसकी वजह से तीन बीमारियाँ चिह्नित हुईं- एक तो पिछली टाँगों से लंगड़ाकर चलना (Rhumatism), दूसरी हीमोग्लोबीन यूरिया जिसे लहू मूतना कहते हैं और तीसरे में जानवर चारे की जगह मिट्टी-विट्टी खाने लगता है। इसका मूल रूप से कारण था फर्टिलाइजर में नाइट्रोजन ज्यादा मात्रा में पड़ना। इसका इन्वेस्टिगेशन हुआ तो पर्दाफॉस हो गया, फिर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद से सैकड़ों योजनाएं चलीं तमाम वैज्ञानिक लगे। पूरा पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग, गुजरात सब जगह स्टडी हुयी तो पता चला कि मिट्टी में कमी आ गयी और अब तो ढेर सारी बढ़ती जा रही है।

जब मैं वहाँ से गाँव जाता था तो विशेष रूप से जाड़े में जब आग जलाकर बैठते थे तो गाँव के कई लोग आकर बैठ जाते थे। बुजुर्ग लोग बात करते थे कि भाई खाने-पीने की चीजों में वो बात नहीं रह गई। मैं सोचा करता था कि ये लोग ऐसा क्यों कहते हैं? आलू वही है, सब्जी वही है, दूध वही है, गेहूँ वही है, लेकिन वे लोग कहते थे कि खाने-पीने की चीजों में वो बात नहीं है। तो मैंने इस आइडिया को लिया और हिसार वापस जाकर प्रयास किया कि क्या कारण हो सकता है। मैंने ये सोचा कि बाकी सब चीजें तो ठीक चल रही है, एग्रीकल्चर

में हमने कुछ चीजें बदलीं हैं जैसे रासायनिक खाद, कीटनाशक। फर्टिलाइजर का उपयोग पर हमने काम किया जिससे मिट्टी की गुणवत्ता कम हुयी है और अब तो नष्ट ही हो गयी है। कीटनाशक पर शोध करने से पता चला कि कीटनाशक से कीट तो चले ही गये लेकिन कीटनाशक के अवशेष हर खाने-पीने वाली चीज में पाए जाते हैं शायद ही कोई ऐसी चीज बची होगी जिसमें पेस्टीसाइड के अवशेष न हों। हरियाणा में रहते हुए मैंने इस विषय पर तेरह साल काम किया। माँ के दूध में, घी में, तेल में, कोई भी चीज का आप नाम लीजिए गेहूँ में, दाल में हर चीज में पेस्टीसाइड के अवशेष हैं। इनमें पेस्टीसाइड की कितनी मात्रा है? केमिस्ट कहते हैं कि यदि यह एक मिलीग्राम होनी चाहिए तो हानिकारक नहीं है लेकिन वह हजार मिलीग्राम से ऊपर है। इसी वजह से रोगों से लड़ने की क्षमता कम हो गई।

इस समस्या का समाधान यह है कि कीटनाशक का प्रयोग कम किया जाए। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि इतनी बड़ी आबादी को भोजन कैसे उपलब्ध होगा? वैज्ञानिक भी कहते थे कि इतनी बड़ी आबादी है इसका पेट भरना है। हमारे सामने प्रश्न था कि इनका उपयोग करेंगे तो रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होगी और बीमारियाँ बढ़ेंगी और प्रयोग नहीं करते हैं तो खाद्यान्न समस्या उत्पन्न होगी। इसी विषय को लेकर हमारी टीम कुछ जड़ी-बूटियों पर प्रयोग कर रही थी। अश्वगंधा, नीम और आंवला को लेकर एक, दो दवा विकसित की। इसी दौरान गौ-मूत्र की बात आई और मैं उस पर अनुसंधान करने लगा तो पता चला कि पेस्टीसाइड के प्रभाव को कम करने के लिए गो-मूत्र से बढ़िया कोई औषधि नहीं है। जितने टाक्सिन पेस्टीसाइड और फर्टिलाइजर के खाने-पीने की चीजों में आते हैं उनको सबसे बढ़िया कोई चीज न्यूट्रलाइज कर सकती है तो वह देशी गाय का गो-मूत्र है। ये निष्कर्ष करीब बीस वर्ष के शोध के पश्चात प्राप्त हुआ।

कुल चौंतीस वर्ष का शोध कार्य पेस्टीसाइड एवं इससे जुड़ी चीजों को बनाने में लगा। कुछ मोटी-मोटी बातों का उल्लेख मैं करता हूँ। गो-मूत्र का सेवन करने से, पेस्टीसाइड खाने से हमारे शरीर में जो टॉक्सिन इकट्ठा होती है वह समाप्त होती है और शरीर की इम्युनिटी बढ़ाती है। इम्युनिटी बढ़ने से कोई इन्फेक्शन नहीं होगा, प्रारम्भिक अवस्था में कैंसर नहीं होगा यदि होगा तो ठीक

हो जायेगा। बहुत से ऐसे लोग भी आते हैं जिन्हें मेडिकल इंस्टीट्यूट में मना हो जाता है। नागपुर के केन्द्र में कैंसर के रोगी ठीक हुए हैं। ऐसे हजारों उदाहरण हैं।

गाय के दूध के सम्बन्ध में जैसा सभी लोग समझते थे मैं भी समझता था। दूध तो दूध होता है चाहे वह गाय का हो या भैंस का या विदेशी गाय का हो। विदेशी गाय चालीस लीटर दूध देती है जबकि देशी गाय दस लीटर। तो क्यों न विदेशी गाय ही पाली जाये? इस पर भी हम लोगों ने शोध किया। दूध में मुख्य रूप से दो-तीन चीजें होती हैं, प्रोटीन, फैट, लैक्टोज आदि। प्रोटीन में कैसीन प्रोटीन होती है। कैसीन प्रोटीन भी तीन प्रकार की होती है- अल्फा α, बीटा β, गामा γ। जो कैसीन है वह दो प्रकार की होती है A1 और A2। हमारे देशी गोवंश में A2 प्रकार की प्रोटीन होती है और विदेशी तथा संकरीकरण से पैदा किये गोवंश में A1 प्रकार की होती है। A1 प्रकार की प्रोटीन वाला दूध पीने से टी.बी. होता है, कैंसर होता है, ऑटिज्म होता है, डायबटीज होता है आप जिन बीमारियों का नाम लीजिए वे सारी बीमारियाँ होती हैं। A1 प्रकार का जो दूध है उसकी प्रोटीन टूटकर के एक अफीम जैसा पदार्थ (opioid substance) बनाती है उसकी वजह से ढेर सारी बीमारियाँ पैदा होती हैं।

आज मेडिकल साइंस वाले कहते हैं कि भारत डायबटीज वर्ल्ड कैपिटल बन रहा है। क्यों बन रहा है? उसका कारण है कि हमारे खाने-पीने में जो मार्केट के दूध का प्रयोग हो रहा है वह जहर है। हमारे देशी गोवंश के A2 प्रकार के दूध से बीमारियाँ नहीं होती हैं, अपेक्षाकृत वह बीमारियों को ठीक करता है यह वैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो गया है। आज छत्तीसगढ़ और दिल्ली में देशी गाय का दूध A2 मिल्क के नाम से बिक रहा है। वह 100 से 150 रुपये लीटर तक मिलता है। इसी प्रकार बात आयी घी की। मार्केट में जो घी बिक रहा है वह घी है ही नहीं। घी का अंग्रेजी में कोई पर्यायवाची शब्द ही नहीं है। जो हमारे यहाँ मार्केट में मिलता है वह बटर ऑयल है। घी और बटर ऑयल में अन्तर है। घी का मतलब है देशी गाय के दूध को उबाल कर, उस दूध को ठण्डा करके जामन डाला गया दही जमी, दही से बिलो करके मक्खन निकाला, मक्खन को गर्म करके घी बनाया और यही वास्तविक घी है। मार्केट में- दूध किसका था पता नहीं,

दूध में से क्रीम को निकाल लिया और क्रीम को गर्म कर लिया जो निकाला वो घी है। अब जो दही जमाकर घी निकाला जाता है और वह जो केवल क्रीम से घी निकाला जाता है, दोनों में जमीन-आसमान का अन्तर है। जो क्रीम वाला है वह नुकसान कर सकता है। देशी गाय के घी में जो तत्व पाए जाते हैं वे एंटीबायोटिक हैं, स्मरण शक्ति बढ़ाने वाले हैं, डिप्रेशन को दूर करने वाले हैं, कैंसर से बचाने वाले हैं। यदि बच्चों को देशी गाय का घी खिलाते हैं तो निश्चित रूप से मेमोरी बढ़ती है, निश्चित रूप से डिप्रेशन कम होता है। मैंने घी के द्वारा एक दवा बनायी है जिससे माइग्रेन नहीं होता है मतलब नर्वस सिस्टम से जुड़े जितने रोग हैं, वे सब ठीक हो जाते हैं।

आज का विषय है भारतीय अस्मिता की निरन्तरता। आज इसकी आवश्यकता है कि हमारी खेती बंजर को बंजर होने से कैसे बचाया जाए। भारतीय कृषि की अस्मिता को कैसे सुरक्षित किया जाए। खेती में गाय का अत्यधिक महत्व है। खेती के लिए नुकसान न करने वाला फर्टिलाइजर चाहिए, पेस्टीसाइड चाहिए। इसे हम गो-मूत्र, गोबर से बना सकते हैं। गो-मूत्र से हमने आल-आउट जैसा रेपलेंट बनाया है, जिससे मक्खी, मच्छर घर में नहीं आते। आल-आउट में पाए जाने वाले तत्व कैंसर कारक होते हैं, इम्युनिटी कम करते हैं, शरीर में अनेक समस्याएँ पैदा करते हैं। गोबर के कण्डे से दन्त-मंजन भी बनाया गया है। ऐसे बहुत से गो-उत्पाद निर्मित हो चुके हैं जो नुकसान रहित और स्वास्थ्यवर्धक हैं। गाय हमारे स्वास्थ्य, कृषि आदि की ही नहीं अपितु हमारी अस्मिता की एक महत्वपूर्ण घटक है।

*****

भारतीय अस्मिता की न्याय एवं विधि के क्षेत्र मे निरंतरता

अशोक मेहता[1]
ओम प्रकाश मिश्र[2]

भारत का सामान्य अर्थ 'भा' यानी ज्ञान अथवा प्रकाश और 'रत' यानी उसी में संलग्न (रत) रहना है। हजारों वर्षों से भारत ज्ञान एवं प्रकाश के पुंज के रूप में रहा है जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्कृष्ट उपलब्धियों एवं बौद्धिक कार्यों से प्रमाणित होता है।

अस्मिता हमारी संस्कृति की मूल प्रकृति है, क्योंकि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में हमारी अस्मिता की समुचित पहचान निहित है। यह हमारी समग्र सोच, हमारे अस्तित्व, हमारी संस्कृति के मूल तत्व में निहित है, जो कि हजारों वर्षों से पूर्णतः सुरक्षित है। अस्तु, भारतीय अस्मिता का भाव यह है कि कुछ ऐसे मूल तत्व हैं जो भारत राष्ट्र के संदर्भ में वैसे ही हैं, जैसे शरीर में आत्मा होती है। भारतीय संस्कृति में हमारी अस्मिता स्थायी मूल तत्व है।

सत्यमेव जयते नानृतं
सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत् सत्यस्य परमं निधानम्। मुण्डकोपनिषद (3.6.16)

---

1. वरिष्ठ अधिवक्ता उच्च न्यायालय इलाहाबाद, एवं अतिरिक्त महान्यायवादी-भारत सरकार
2. भारतीय रेलवे सेवा के सेवानिवृत्त वरिष्ठ अधिकारी एवं पूर्व अध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

अंततः सत्य की ही जय होती है न कि असत्य की। यही वह मार्ग है जिससे होकर आप्त काम (जिनकी कामनायें पूर्ण हो चुकी हों) मानव जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।

भारतीय संस्कृति अत्यंत प्राचीन है। इसका उद्‌गम कैसे और कब हुआ, यह बात पता कर पाना बहुत कठिन है। ऋग्वेद में कहा गया है।

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव।[1]

कौन इस बात को वास्तविक रूप से जानता है और कौन इस लोक में सृष्टि के उत्पन्न होने के विवरण को बता सकता है कि वह विविध प्रकार की सृष्टि किस उपादान कारण से और किस निमित्त कारण से सब ओर से उत्पन्न हुई। देवता भी इस विविध प्रकार की सृष्टि उत्पन्न होने के बाद के हैं। अतः ये देवगण भी अपने से पहले की बात के विषय में नहीं बता सकते इसलिए कौन मनुष्य जानता है जिस कारण यह सारा संसार उत्पन्न हुआ।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंगः वेद यदि वा न वेद।[2]

यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस प्रकार से उपादान और निमित्त कारण से उत्पन्न हुई इसका मुख्य कारण है, ईश्वर के द्वारा इसे धारण करना। इसके अतिरिक्त अन्य कोई धारण नहीं कर सकता। इस सृष्टि का जो स्वामी ईश्वर है, अपने प्रकाश के आनंद स्वरूप में प्रतिष्ठित है। प्रिय श्रोताओं! वह आनंद स्वयं परमात्मा ही इस विषय को जानता है उसके अतिरिक्त (इस सृष्टि उत्पत्ति तत्व को) कोई नहीं जानता है।

किंतु इतना तो निश्चित है कि भारतीय संस्कृति हजारों वर्ष पुरानी है और जो संस्कार भारत भूमि पर विकसित हुए हैं, उसका उद्‌गम निश्चित तौर पर हजारों वर्ष पूर्व ही हुआ है।

वस्तुतः हजारों वर्ष पूर्व से वेदों, उपनिषदों, पुराणों और अन्य ग्रंथों के

---

1. ऋग्वेद मन्त्र 6/सूक 129/मंडल 10
2. ऋग्वेद मन्त्र 7/सूक 129/मंडल 10

माध्यम से प्रत्यक्षतः एवं परोक्षतः ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान में भारतीय संविधान की उद्देशिका एवं मूल कर्तव्यों में जिन विषयों का उल्लेख हुआ है, वे भारतीय संस्कृति, भारतीय अस्मिता एवं भारतीय जीवन पद्धति में रचे बसे हैं।

वस्तुतः धार्मिक स्वतंत्रता, समता और बंधुता जो कि भारतीय संविधान के उद्देशिका में उल्लिखित है, जो भारतीय परम्परा और भारतीय जीवन पद्धति में एक दूसरे से इतने मिले-जुले हैं कि जैसे दो नदियों के संगम पर उनके जल का अंतर करना कठिन होता है, उसी प्रकार इन संवैधानिक आदर्शों को भारतीय परम्परा और भारतीय जीवन पद्धति से अलग करना अत्यधिक कठिन है।

भारत के प्रत्येक नागरिक का यह भी कर्त्तव्य है कि वह अपनी गौरवशाली परम्परा को महत्व दें और संस्कृति का परिरक्षण करें। प्रकृति पर्यावरण का रक्षा करना, उसका संवर्धन करना तथा प्राणी मात्र के प्रति दया भाव रखना भी हर भारतीय का कर्त्तव्य है।[1]

भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करना और उसे अक्षुण्ण रखना, अपनी संस्कृति की गौरवशाली परम्परा का महत्व समझना और उसका परिरक्षण करना, प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करना, जिसमें वन, झील, नदी और वन्य जीव का संवर्धन भी आता है, हमारा परम कर्तव्य है।

भारतीय संस्कृति और भारतीय जीवन पद्धति दोनों इस प्रकार की श्रेष्ठ परम्परा को अपने में सँजोए हुए हैं कि हमारी संस्कृति में सभी प्रकार की वनस्पतियों, वृक्षों, पशु पक्षियों, नदियों, सरोवरों, पर्वतों एवं समुद्र में देवत्व के दर्शन सहज सुलभ हैं। अथर्ववेद में उल्लेख है कि हमारी राष्ट्रीय प्रवृत्ति, हमारे राष्ट्रीय बल और सामर्थ्य से उत्पन्न होती है।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षमुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु।।[2]

---

1. अनुच्छेद-51क
2. अथर्ववेद 19/41/1

''अर्थात् कल्याण की रक्षा करने वाले आत्मज्ञानी ऋषि प्रारंभ में तप और दीक्षा का आचरण करने लगे, उससे राष्ट्र हुआ, बल और सामर्थ्य भी उत्पन्न हुआ। इसलिए इसके सामने ज्ञानी पुरुष विनम्र हों।''

अथर्ववेद में उल्लेख है-

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊजस्तन्वः संबभूवुः
तसु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं-पृथिव्याः।[1]

''अर्थात् हे मातृभूमि! तेरे भीतर और ऊपर जो-जो पदार्थ हैं उन सबकी और तेरी, शत्रुओं के हाथ से रक्षा करने के लिए जो विद्वान, बलवान और धनवान मनुष्य एकत्र होकर यत्न करते हैं, उनके उस संघ में हमें स्थान दे और हमारी रक्षा कर, क्योंकि तू हमारी माता और हम तेरे पुत्र दुःख से छुड़ाने वाले हैं।''

यानी हम भारत माता के पुत्र हैं एवं हमें इसकी उन्नति हेतु प्रयासरत रहना है और यह गणतंत्र उसी का एक स्वरूप मात्र है।

गणतंत्र का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। अथर्ववेद में उल्लेख है कि शासक प्रजाजन के पसंद का होगा, वे राजा को स्वीकार करते हैं यानी गणतंत्र और लोकतंत्र के बीज वैदिक काल से ही उपलब्ध हैं तथा यह हमारी संस्कृति है।

त्वां विशो वृणतां राज्या य त्वामिमाः प्रदिशः पंच देवीः।
वर्ष्मन्राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि।।[2]

''अर्थात सब प्रजाएँ राज्य चलाने के लिए तुझे ही स्वीकार करें। सब दिशा और उपदिशाओं में रहने वाले प्रजाजन तुझे ही पसंद करें। तुम राष्ट्र के परम उच्च ऐश्वर्यवान् राजपद पर आरूढ़ होकर, वीर बनकर, हम सबके लिए धन को योग्य विभाग से बाँट दो।''

ऋग्वेद के षष्ठम् मंडल में सभा का उल्लेख है और सभा ही गणतंत्र और लोकतंत्र की आधारभूमि है।

---

1. अथर्ववेद 12/1/12
2. अथर्ववेद 3/4/2

यूयं गांवो मेदयथा कृश चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वयं उच्यते सभासु।।[1]

''अर्थात् जो मनुष्य कोमल, सत्य, धर्मयुक्त वाणी, सर्व ऋतुओं में सुख करने वाले घर को, सभा को और अधिक अवस्था को प्राप्त करते हैं, वे संसार में कल्याण करने वाले होते हैं।''

पुनः अथर्ववेद के तृतीय कांड में राजा के चुनाव का स्पष्ट उल्लेख है।

ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये।
उपस्तीन्पर्ण मह्यं त्वं सर्वान्कृण्वभितो जनान्।।[2]

''अर्थात् जो सरदार और राजा का चुनाव करके राज को बनाने वाले हैं और जो सूत तथा ग्राम के नेता हैं, वे सब मेरे चारों ओर उपस्थित हों।''

नारद स्मृति धर्मकोष पृष्ठ 870 में कहा गया है-

पाषण्डनैगमश्रेणीपूगव्रातगणादिषु।।
संरक्षेत्समयं राजा दुर्गे जनपदे तथा।।

राजा को वेदों में विश्वास न करने वाले (पाखंडी), निगम को मानने वाले तथा श्रेणी, पूग, व्रत गणादि का संरक्षण भी करना चाहिए, जैसे कि वह किले और उसके क्षेत्र की रक्षा करता है।

वाल्मीकि रामायण में अयोध्या कांड के द्वितीय सर्ग के 19वें एवं 20वें श्लोक में भी राजा के चुनाव का स्पष्ट उल्लेख है।

तस्य धर्मार्थविदुषो भावमाज्ञाय सर्वशः।
ब्राह्मणा जनमुख्याश्च परैजानपदैः सह।।
समेत्य मन्त्रयित्वा समतागतबुद्धयः।
ऊचुश्च मनसा ज्ञात्वा वृद्धं दशरथ नृपम्।।

''अर्थात् धर्म और अर्थ के ज्ञाता महाराज दशरथ के अभिप्राय को पूर्णरूप से जानकर सम्पूर्ण ब्राह्मण और सेनापति नगर और जनपद के प्रधान-प्रधान व्यक्तियों के साथ मिलकर परस्पर सलाह करने के लिए बैठे और मन से

1. ऋग्वेद 6/28/6
2. अथर्ववेद 3/5/7

सब कुछ समझकर जब वे एक निश्चय पर पहुँच गये, तब बूढ़े राजा दशरथ से बोले।''

उपरोक्त संदर्भ यह प्रमाणित करने में सक्षम हैं कि वैदिक काल से गणतंत्र एवं लोकतंत्र प्रभावकारी तरीके से उपलब्ध हैं।

महाभारत में भी सभा का वैज्ञानिक कारण प्रस्तुत है-

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा
न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति
न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्।।[1]

''अर्थात् जिस सभा में बड़े-बूढ़े नहीं, वह सभा नहीं, जो धर्म की बात न कहें, वे बूढ़े नहीं, जिसमें सत्य न हो, वह धर्म नहीं और जो कपट से पूर्ण हो, वह सत्य नहीं है।''

अथर्ववेद के सप्तम् कांड के 12वें सूक्त में भी ग्राम समितियों और राष्ट्र सभाओं का उल्लेख है।

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने।
येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारू वदानि पितरः संगतेषु।।

''अर्थात् ग्राम समिति और राष्ट्रसभा राष्ट्र में होनी चाहिए और राजा को उनका पुत्रीवत् पालन करना चाहिए। ये दोनों सभाएँ एकमत से राष्ट्र का कार्य करें और प्रजारंजन करने वाले राजा का पालन करें। राजा जिस सभासद से राज्यशासन विषयक सम्मति पूछे, वह सभासद योग्य सम्मति राजा को दे। राजा तथा अन्य सभासद् सभाओं में सभ्यता से वाद-विवाद करें।''

उपरोक्त आधार पर आज की संसद एवं राज्यों के विधान मंडल तथा ग्राम सभाओं का अस्तित्व वैदिक काल से ही प्रमाणित होता है। स्पष्ट है कि भारतीय परम्परा में गणतंत्र और लोकतंत्र प्रमाणिक रूप से परिलक्षित होते हैं।

हमारे संविधान का मूल तत्व न्याय है। न्याय और न्यायप्रियता भारतीय परम्परा का एक आवश्यक अंग रहा है।

---

1. उद्योग पर्व 35/58

यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम्।
तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम्।।

जैसे माँ पृथ्वी सभी जीवित प्राणियों को समान धारण करती है, एक राजा (राज्य) को किसी भी भेद-भाव के बिना सभी का पालन-पोषण करना चाहिए।[1]

धर्मार्थावुच्यते श्रेयः कामार्थी धर्म एव च।
अर्थ एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः।।
परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।[2]

कुछ कहते हैं कल्याण और खुशी को प्राप्त करने के लिए धर्म और अर्थ श्रेष्ठ हैं। दूसरों का कहना है कि अर्थ और काम श्रेष्ठ हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो घोषणा करते हैं केवल अर्थ ही सुख को सुरक्षित करता है। लेकिन सही दृष्टिकोण यह है कि धर्म, अर्थ और काम का (त्रिवर्ग) संयुक्त रूप से कल्याण और खुशी को सुरक्षित करते हैं, यद्यपि धर्म के विपरीत इच्छा (काम) और भौतिक संपत्ति (अर्थ) को अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए।

हमारे न्याय प्रणाली का आदर्श है कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो तथा यह भी सुनिश्चित करना है कि किसी भी कारण से कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाये। समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व एवं नियंत्रण इस प्रकार बँटे कि सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो। (अनु0-39)

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में विभिन्न विवादों पर न्याय प्राप्त करने हेतु तीसरे अधिकरण में उल्लेख है।

दृष्टिदोषः स्वयंवादः स्वपक्षपरपक्षयोः।
अनुयोगार्जवं हेतुः शपथश्चार्थसाधकः।।[3]

''अर्थात् निर्णय के हेतु मुकदमे का फैसला देने से पूर्व कुछ बातें आवश्यक हैं जैसे जिसका अपराध देख लिया गया हो, जिसने अपने अपराध को

1. मनुस्मृति- 9/311
2. मनु स्मृति 2/24 और 5/176
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र प्रकरण 56

स्वीकार कर लिया हो, सरलता से जिरह, सरलता से कारणों का पता लग जाना और कसम दिलाना, ये पाँचों बातें सच्चाई को सिद्ध करने में सहायक होती है।''

पूर्वोत्तरार्थव्याघाते साक्षिवक्तव्यकारणे।
चारहस्ताच्च निष्पाते प्रदेष्टव्यः पराजयः।।[1]

''अर्थात् यदि उक्त पाँच हेतुओं के माध्यम से भी वादी-प्रतिवादी की पारस्परिक विरुद्ध दलीलों का उचित समाधान न हो सके तो साक्षियों और गुप्तचरों के द्वारा मामले की छान-बीन कराकर अपराध का फैसला देना चाहिए।''

माननीय उच्चतम न्यायालय की पूर्ण पीठ के द्वारा केशवानंद भारती के केस में महत्वपूर्ण निर्णय दिया गया कि संविधान के मूल तत्व के साथ छेड़छाड़ नहीं की जा सकती है।

श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते।
तत्र श्रौतं प्रमाणन्तु तयोद्वैधे स्मृतिर्त्वरा।।[2]

अगर वेद, स्मृति, पुराण में कोई भी विरोधाभास है तो वेद ही मान्य माना जायेगा।

उपरोक्त कथन की निरन्तरता भारतीय संविधान में निर्देशित प्रावधान में है। कोई भी ऐसी विधि नहीं बनायी जायेगी जो मूल अधिकारों के उल्लंघन में हो (अनु0-13)

विधिक एवं न्याय के क्षेत्र में माननीय न्यायमूर्ति रामाज्यास एवं सुब्रह्मण्यम स्वामी जी के अनुसार भारतीय संविधान में केशवानन्द भारती के निर्णय द्वारा प्रतिपादित संविधान के मूल तत्व का सिद्धान्त, भारतीय अस्मिता के सिद्धान्त सनातन धर्म का ही प्रतिस्थापन है। इसी प्रकार उच्चतम न्यायालय के द्वारा न्यायिक पुनरीक्षण हमारे वेद एवं स्मृतियों में स्थापित सिद्धान्तों पर आधारित है।

तदेतत क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्मः।
तस्माद्धर्मात्परं नास्ति।।
अथो अबलीयान् बलीयांसशंसते धर्मेण।
यथा राज्ञैवम्।।[3]

---

1. महाभारत 1/5/4
2. प्रकरण 57
3. बृहदारण्यकोपनिषद 1-4-14

विधि (धर्म) राजाओं का राजा है। कोई भी विधि (धर्म) से बड़ा नहीं है, विधि (धर्म) राजा (राज्य) की शक्ति से सहायता प्राप्त कर कमजोर को शक्तिशाली के ऊपर विजय प्राप्त करने में सक्षम बनाता है।

''राधाकृष्णन ने 26 जनवरी 1947 को उद्देश्यों के प्रस्ताव के समर्थन में संविधान सभा में बोलते हुए, उपरोक्त श्लोक का हवाला देते हुए कहा कि इसी तरह हम 'संविधान की सर्वोच्चता' के सिद्धांत को अपना रहे हैं। जबकि कानून की पश्चिमी परिभाषा है ''कानून राजनैतिक रूप से श्रेष्ठ द्वारा राजनीतिक रूप से निम्न के लिए आदेश है, जिसमें पुलिस शक्ति और शासन सहित सभी शामिल हैं। कानून और राज्य की शक्ति की सहायता से एक कमजोर की मजबूत पर विजय होती है।

अक्रोधः सत्यवचनं संविभागः क्षमा तथा।
प्रजनः स्वेषु दारेषु शौचमद्रोह एव च।।
आर्जवं भृत्यभरणं नवैते सार्ववर्णिकाः।[1]

सच्चाई, क्रोध से मुक्त होना, दूसरों के साथ धन साझा करना (संविभाग), क्षमा, अपनी पत्नी से बच्चों का प्रजनन, शुद्धता, दुश्मनी की अनुपस्थिति, सीधी अभिव्यक्ति और अपने पर निर्भर व्यक्तियों का भरण पोषण ये सभी वर्ण के व्यक्तियों के लिए है। इसी प्रकार मनुस्मृति में बहुत ही संक्षेप में धर्म के पाँच प्रमुख तत्वों का वर्णन है।

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एवं सामासिकं धर्म चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः।[2]

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (नाजायज धन प्राप्त नहीं करना), शौच (शुद्धता), और इंद्रिय निग्रह (इंद्रियों पर नियंत्रण) संक्षेप में यह सभी वर्णों के लिए सामान्य धर्म है।

उपर्युक्त नियमों में से प्रत्येक को पढ़ने से व्यक्ति को यह पता चलता है कि उसे क्या करना चाहिए और वह क्या नहीं करना चाहिए। उपरोक्त नियमों का

1. महाभारत शांतिपर्व 60/7/8
2. मनुस्मृति 10/163

पालन जीवन में वास्तविक सुख और सद्भाव सुरक्षित करता है। यह सभी मनुष्यों पर लागू होता है चाहे उनके जो भी मत-पंथ हों।

महाभारत में धर्म का वर्णन करते हुए कहा गया है-

धारणाद् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।
यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।।[1]

धर्म समाज को (धारण करता है) बनाए रखता है, धर्म सामाजिक व्यवस्था बनाए रखता है, धर्म मानवता का कल्याण और स्वयं की प्रगति सुनिश्चित करता है। निश्चित रूप से धर्म वही है जो इन उद्देश्यों को पूरा करता है यह 1996 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय के अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया है।

राजा के विषय में शास्त्रों में कहा गया है कि-

व्यवहारेषु धर्मषु योक्तव्याश्च बहुश्रुताः।
वेदार्थतत्वविद्राराजनंस्तर्कशास्त्राबहुश्रुताः।
मन्त्रे च व्यवहारे च नियोक्तव्या विजानता।।[2]

''राजा वही व्यक्ति है जो (1) व्यवहार (न्यायिक कार्यवाही से संबंधित कानून) और धर्म (सभी विषयों पर कानून) में अच्छी तरह जानकार है, (2) एक बहुश्रुत (गहन विद्वान) है, (3) एक प्रमाणज्ञ (साक्ष्य के कानून में अच्छी तरह से निपुण), (4) न्यायशास्त्रावलम्बी (कानून के प्रति प्रतिबद्ध), और (5) न्याय के प्रशासन को पूरा करने के लिए वेदों और तर्कों का पूरी तरह से अध्ययन किया है।''

न्याय (पण्य) व्यवसाय का हेतु नहीं है। वादी, उपभोक्ता नहीं है। हम न्याय का व्यापार नहीं करते। यदि ऐसा है तो अधिवक्ता और न्यायाधीश के आदिकाल से आज तक कार्य क्या है?

व्यवहारविदः प्राज्ञा वृत्तशीलगुणान्विताः।
रिपौ मित्रो समा ये च धर्मज्ञाः सत्यवादिनः।।

---

1. महाभारत कर्णपर्व 69/58
2. महाभारत शांति पर्व-24/21-22

निरालसा जितक्रोधकामलोभाः प्रियंवदा।
राज्ञा नियोजितव्यास्ते सभ्यास्सर्वासु जातिषु।।[1]

''जो नागरिक और आपराधिक कानून और विधि प्रणाली का अच्छी तरह से जानकार हो, श्रेष्ठ चरित्रवाला, मित्रों और शत्रुओं के प्रति निष्पक्ष, धर्म का पालन करने वाले स्वभाव का, सच्चा, सदैव सक्रिय हो और क्रोध, इच्छा तथा लालच पर पूर्ण नियंत्रण रखने वाला हो एवं सुखद भाषण एवं आचरण करने वाला हो, वह चाहे किसी भी जाति का हो न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए।''

इन प्रावधानों का एक बार पढ़ना न केवल एक व्यक्ति की योग्यता और व्यक्तित्व गुणों को इंगित करता है जिसे न्यायिक न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए बल्कि न्याय को प्रदान करने में न्यायपालिका की आवश्यकता के मुताबिक स्वतंत्रता और निष्पक्षता पर प्रकाश डालता है। यह एक महत्वपूर्ण पहलू है, जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए और सभी स्तरों पर न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए एक असंदिग्ध विधि निर्धारित की जानी चाहिए।

मनु, शुक्र, वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य, विष्णुधर्मसूत्र आदि का कहना है कि न्याय शासन राजा का व्यक्तिगत कार्य या व्यापार है। मनु ने न्याय-शासन को धर्म का प्रतीक माना है। जो राजा निरपराध को दंडित करता है और अपराधी को छोड़ देता है, वह पाप करता है, निंदा का भागी होता है।[2]

दुष्टस्य दण्डः सुजनस्य पूजा न्यायेन कोषस्य च संप्रवृद्धिः।
अपक्षपातोऽर्थिषु राष्ट्ररक्षा पञ्चैव यज्ञाः कथिता नृपाणाम्।।[3]

दुष्टों को दंडित करना, अच्छे व्यक्ति का सम्मान करना, न्याय मार्ग से कोष को समृद्ध करना, विवादों के प्रति निष्पक्ष होना और राज्य की रक्षा करना- ये एक राजा द्वारा किए जाने वाले पाँच यज्ञ हैं।

वैदिक काल से आज तक भारतीय परम्पराओं में पाप और अपराध को

---

1. शुक्र नीति 4/5/4-5
2. व्यवहार पद्धति, पृ. 703, धर्म शास्त्र का इतिहास, द्वितीय भाग, श्री पाण्डुरंग वामन काणे।
3. अत्रि स्मृति-28

एक दूसरे से मिला जुला सा माना जाता है, क्योंकि मूलतः पाप और अपराध के मूल में जो तथ्य है वह यही है कि सन्मार्ग से प्रतिकूल आचरण करना पाप भी हो सकता है और वही अपराध भी हो सकता है।

ऋग्वेद के सातवें मंडल में उल्लेख है-

न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः।
अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता।।[1]

''अर्थात् प्रगति में रुकावट होने से पाप में प्रवृत्ति होती है। सुरा पीने, क्रोध, जुआ और अज्ञान से पाप उत्पन्न होता है। जब मनुष्य की प्रगति में कोई बाधा उत्पन्न करता है, तब मनुष्य बाधा उत्पन्न करने वाले के प्रति मन ही मन द्वेष करता है और यह द्वेष ही उसे पाप में प्रवृत्ति करता है। बड़ा छोटे को पाप में प्रवृत्त करता है। धनी निर्धन को, बलवान् निर्बल को तथा ज्ञानी अज्ञानी को पाप में प्रवृत्त करता है। निद्रा, सुस्ती और आलस्य ये सभी पाप के संवर्तक हैं।''

वस्तुतः पाप और अपराध को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है क्योंकि धर्म की दृष्टि में जो पाप है वही कानून की दृष्टि में अपराध है।

भारतीय जीवन पद्धति और भारतीय मनीषा में धर्म प्रधान जीवन ही रहा है और अनंत काल से हमारे सभी विषयों में धर्म ही रहा है। धर्म को ही न्याय का प्रतीक माना जाता रहा है। यहाँ तक कि श्री पी.वी. काणे ने अपनी पुस्तक का शीर्षक ''धर्मशास्त्र का इतिहास'' रखा है। जबकि उसमें विधि, न्याय इत्यादि की विशद व्याख्या उपलब्ध है।

महामहोपाध्याय पांडुरंग वामन काणे ने अपने ''धर्मशास्त्र के इतिहास में'' विभिन्न स्मृतिकारों तथा उनके भाष्यकारों को उद्धृत करते हुए व्यवहार शब्द की न्याय के अर्थ में तुलनात्मक विवेचना की है। 'व्यवहार', शब्द सूत्रों एवं स्मृतियों द्वारा कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। इसका एक अर्थ है लेन-देन। एक अन्य अर्थ है झगड़ा या मुकदमा (अर्थकार्य, व्यवहारपद)। इसका तीसरा अर्थ है लेन-देन में प्रविष्ट होने से संबंधित न्याय (कानूनी सामर्थ्य) इसका चौथा अर्थ है किसी विषय को तय करने का साधन। स्पष्ट है बाद के तीनों अभिप्राय न्याय एवं

1. ऋग्वेद 7/86/6

न्याय पद्धति के द्योतक हैं।[1]

'व्यवहार में उपसर्ग 'वि' का प्रयोग 'बहुत' के अर्थ में, 'अव' का 'संदेह' के अर्थ में तथा 'हार' का 'हटाने' के अर्थ में प्रयोग हुआ है। अर्थात् यह बहुत से संदेहों को हटाता या दूर करता है (नाना संदेह हरणाद् व्यवहार इति स्मृतः-कात्यायन)। यह परिभाषा न्याय शास्त्र को बहुत उच्च पद दे देती है। भारतीय दर्शनशास्त्र की शाखाओं का उद्देश्य है सत्य या परम् सत्य की खोज करना। सत्य की खोज में दार्शनिक मनमाना समय ले सकता है, किंतु न्याय यथासंभव शीघ्रता से किया जाना चाहिए। इतना ही नहीं, न्याय, विधि अपने ढंग से सत्य की खोज करती है, इसे वाचिक एवं लेख्य प्रमाण पर आधारित होना पड़ता है।[2] श्री काणे के अनुसार व्यवहार पद का अर्थ है झगड़े, विवाद या मुकदमे का विषय (व्यवहारः तस्य पदम विजयः-मिताक्षरा)।

श्री काणे के अनुसार ''याज्ञवल्क्य स्मृति'' में व्यवहार पद की जो परिभाषा दी गई है- जब कोई राजा को सूचित करता है या आवेदन देता है (आवेदयति चेद राज्ञे), उससे व्यक्त होता है कि व्यवहार पद के अंतर्गत वे झगड़े आते हैं, जो वादियों या प्रतिवादियों की ओर से कचहरी में आरंभ किए जाते या लाए जाते हैं।

''मनु का कहना है कि न तो राजा को और न किसी राज्य कर्मचारियों को मुकदमा आरंभ करना चाहिए और न ही राजा को किसी वादी द्वारा लाये गये मुकदमे को दबा देना चाहिए या उस पर मौन रह जाना चाहिए''।[2] यह भारतीय न्याय परंपरा का अति प्रगतिशील तत्व है जहाँ राजा को हर हाल में सकारात्मक अधिनिर्णय देने के लिए प्रतिबद्ध किया गया है, हालांकि यह दिलचस्प है कि उन्हें किसी मामले को स्वतः संज्ञान (Suo-moto) में लेने से निवारित किया गया है। ''नारद ने उस सभी विषयों को, जिनमें राजा अपनी ओर से हाथ लगाता है, एक विशिष्ट कोटि में रखा है, जिसे 'प्रकीर्णक' कहा जाता है।''

अर्थशास्त्र के कण्टकशोधन नामक परिच्छेद में उन विषयों की विवेचना की गई है, जिनके फैसले उन प्रदेष्टाओं द्वारा किए जाते थे, जो न्याय निर्णयन

1. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-।।, पी.वी. काणे, पृष्ठ-706
2. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-।।, पी.वी. काणे, पृष्ठ-708

में आधुनिक कोरोनरों या पुलिस अधिकारी के समान थे।

न्याय एवं विधि का सिद्धान्त इतना ऊँचा था कि कौटिल्य ने अध्यक्षों, न्यायाधीशों, धर्माध्यक्षों, साक्षियों की सच्चाई और बेईमानी का पता लगाने का कार्य प्रदेष्टाओं को सौंपा है। ऐसे न्यायाधीशों को दण्ड दिया जाता है, जो वादियों या प्रतिवादियों को धमकाकर, टेढ़ी भौंहें दिखाकर चुप कर देते थे। न्यायाधीशों का ऐसा दायित्व निर्धारण आधुनिक न्याय प्रणाली में भी देखने-सुनने को नहीं मिलता है।

श्री काणे ने भारतीय न्याय शास्त्र की परम्परा को समृद्ध बनाने के लिए कौटिल्य की सराहना की है। अर्थशास्त्र में दी गई अपराधों की तालिका के वृहदाकार रूप की तुलना आधुनिक भारतीय दण्ड विधान से की गई है। सिविल मामलों से सम्बंधित अभियोग 'धर्मस्थीय' तथा आधुनिक फौजदारी विषयों से संबंधित अभियोग 'कण्टकशोधन' वर्ग में रखे गए हैं। ऋणदान से लेकर दायभाग (सम्पत्ति विभाजन) तक सारे व्यवहार पद (अभियोग) अर्थमूल या धनमूल (सिविल) तथा वाक्पारुष्य (अपमान, गाली-गलौज), दण्डपारुष्य (मारपीट, आक्रमण), साहस (हत्या तथा अन्य हिंसाएँ), स्त्री संग्रहण (व्यभिचार), क्रिमिनल अभियोगों में रखे गए हैं। बृहस्पति ने इन अभियोगों को केवल शास्त्रोक्त नियमों पर ही नहीं, प्रत्युत् तर्क एवं विवेक के आधार पर निपटाने का समर्थन करके न्याय की अधुनातन एवं समसामयिक मूल भावना का दिग्दर्शन कराया है।

वर्तमान न्याय प्रशासन की भाँति उच्च न्यायालय से लेकर निम्न न्यायालय तक की संरचना निम्नवत् थी - राजा, न्यायाधीश, गण, पूग, श्रेणी एवं कुल। सामाजिक संरचना के अनुसार गण, पूग, श्रेणी एवं कुल में विभिन्न वर्गों तथा पेशों के व्यक्ति शामिल होते थे। राजा सर्वोच्च न्यायाधीश था तथा उसके निम्नतर न्यायालय के न्यायाधीश राजा द्वारा नियुक्त होते थे। कौटिल्य ने ग्रामिक या ग्रामकूटों को लघु न्यायालय माना है, जिन्हें चोरी या मिलावट करने वालों को ग्राम से बाहर करने की शक्ति प्राप्त थी (ग्रामकूटम ध्यक्ष्यम् वा सत्री ब्रूयात्)।[1]

प्राचीन काल में मुकदमे की प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के प्रलेखों का

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र-4/4

चलन था। मिताक्षरा के अनुसार ये प्रमाणपत्र दो प्रकार के थे-राजकीय और जानपद। इनमें से पहले वाले को पब्लिक और दूसरे को प्राईवेट प्रलेख माना जा सकता है। इस प्रक्रिया में कई प्रकार के राजकीय लेख पत्रों और राजाज्ञाओं को जारी किया जाता था। इनमें 'जयपत्र' (मुकदमे की जीत का निर्णय) सर्वाधिक उल्लेखनीय है। नारद स्मृति, विष्णुधर्मसूत्र तथा कात्यायन स्मृति के अनुसार लेख प्रमाण अखण्ड या सिद्ध तभी माने जाते थे, जो नियमानुकूल लिखित तथा संदेहहीन एवं अर्थयुक्त शब्दों से पूर्ण हों।

श्री काणे के अनुसार भोग या भुक्ति के संबंध में स्वामित्व के अधिकार के दो उद्‌गम हैं- भुक्तिसागमा (साधिकार) या अनागमा। विभिन्न स्मृतिकारों ने आगम (परम्परागत) स्वामित्व की अपेक्षा भोग (Occupancy) को शक्तिशाली ठहराया है। लेकिन नारद स्मृति के अनुसार भोग करने वाले व्यक्ति को उसकी वैधानिकता सिद्ध करनी होगी अन्यथा वह चोर माना जाएगा। गौतम, मनु और याज्ञवल्क्य ने बीस वर्षों तक के अवैधानिक भोग को स्वामित्व के लिए पर्याप्त माना है। वर्तमान न्याय प्रणाली के लिखित पत्रों के सापेक्ष मनु ने एक महत्वपूर्ण अवधारणा दी है कि बन्धक एवं प्रतिभूति, समय के व्यवधान से समाप्त नहीं होते (No Lapse) तथा बहुत लम्बी अवधि के बाद भी उन्हें लौटाया जा सकता है।

मनुस्मृति, महाभारत में सभा पर्व, नारद, विष्णुधर्मसूत्र के अनुसार साक्षी और साक्ष्य वही होते हैं जो ऐसे व्यक्ति द्वारा दिए जाएँ जिसने या तो देखा हो, सुना हो या विवाद (मामले) में अनुभव प्राप्त किया हो। इन्हीं ग्रंथों में साक्षियों के विभिन्न गुणों और योग्यताओं की गणना में लोभहीनता और दोनों दलों द्वारा स्वीकार्यता को प्रमुख योग्यता माना गया है। भारतीय विधिशास्त्रियों ने अर्थमूल (सिविल) वाद में साक्षियों की गहन जाँच की आवश्यकता पर बल दिया है। जबकि हिंसामूल (क्रिमिनल) वादों में साक्षी संबंधी अयोग्यता निर्धारण में बहुत अधिक कठोरता की अपेक्षा नहीं की गई है।

कोई भी पक्ष स्वीकारोक्ति, झूठी गवाही अथवा पूर्ण जाँच और प्रमाण के कारण मुकदमा जीते हारे, न्यायाधीश को इसे घोषित करना चाहिए और जीतने वाले पक्ष को जयपत्र (आदेश) उपलब्ध कराना चाहिए। इस क्रम में वसिष्ठ पूर्ववर्ती निर्णय (Precedent) 'आगमाद् दृष्टाच्च' के संदर्भ के महत्व को भी

रेखांकित करते हैं।

धन संबंधी मामलों (सिविल मामलों) में हारने वाले पक्ष को राजा की आज्ञा से मुकदमा जीतने वाले पक्ष को निर्णय ऋण (Judgement debt) और राजा को अर्थदण्ड देना होता था। यही न्यायालय का कोर्ट फीस माना जाता था।

भारतीय अस्मिता न्याय के प्रति कितनी समर्पित थी इसका उल्लेख अथर्ववेद के एकादश कांड में मिलता है।

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले।।[1]

''अर्थात् ऋत, सत्य, तप, राष्ट्र, श्रम, धर्म, कर्म, भूत, भविष्य, वीर्य, लक्ष्मी, बलिष्ट में रहने वाला बल यह सब उच्छिष्ट में रहता है।''

वस्तुतः राजा, राज्य प्रशासन, न्याय व्यवस्था ये सारी अवधारणाएँ एक दूसरे से मिली जुली हैं, उन्हें विदेशी मानकों के आधार पर देखना उचित नहीं है। ऋत शब्द का प्रयोग भारतीय मनीषियों ने बहुधा किया है और वह पूर्णतः सत्य, न्याय और भारतीय अस्मिता को व्यक्त करता है। भारतीय अस्मिता इन गम्भीर और जटिल विषयों का प्रतिपादन और सरलीकरण वैदिक काल से लेकर आगे के काल तक प्रस्तुत करती है, जिससे एक अद्‌भुत दृष्टि भी प्राप्त होती है। चूँकि भारत की संस्कृति भोगवादी संस्कृति नहीं थी और हमारा जीवन आरंभिक काल में जंगलों में रहा है अस्तु भोगवादी हमें न्याय व्यवस्था से इतर समझते हैं। हमारी संस्कृति आरण्यक संस्कृति ही रही है।

भारत में आरंभ से धर्म और न्याय एक दूसरे से जुड़ा हुआ है। धर्म आधारित जीवन में न्याय का पुट अवश्य ही था और इस न्याय को करने के लिए यह ध्यान रखना था कि यदि राजा अथवा शासक का न्याय सही नहीं हुआ तो न्याय मात्र एक शब्द बनकर ही रह जाएगा। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दंड की मात्रा का उल्लेख है।

नेति कौटिल्यः। तीक्ष्णदण्डो हि भूतानामुद्वेजनीयः।
मृदुदण्डः परिभूयते। यथार्हदण्डः पूज्यः।

---

1. अथर्ववेद (11.7.17)

सुविज्ञातप्रणीतो हि दण्डः प्रजा धर्मार्थकामैर्योजयति।[1]

अर्थात् आचार्य कौटिल्य इस युक्ति से सहमत नहीं है। उनका कहना है कि कठोर दंड देने वाले राजा (निष्ठुर शासक) से सभी प्राणी उद्विग्न हो उठते हैं किन्तु दण्ड में ढिलाई कर देने से भी लोक, राजा की अवहेलना करने लगता है, इसलिए राजा को समुचित दण्ड देने वाला होना चाहिए।

स्मृतिकारों के अनुसार दण्ड का उद्देश्य पीड़ित को अपकार के बदले संतुष्टि भाव देना है ताकि उसे कानून को हाथ में लेने से रोका जा सके, साथ ही भविष्य में ऐसे अपकर्म की पुनरावृत्ति का निवारण भी किया जा सके। दण्ड शब्द की व्युत्पत्ति ही 'दम्' धातु से हुई है जिसका तात्पर्य है निवारण करना। शांतिपर्व में कहा गया है-

'राजदण्ड भयादेके पापाः पाप न कुर्वते।
यम दण्ड भयादेके परलोक भयादपि।।
परस्पर भयादेके पापाः पापम् न कुर्वते।
दण्डस्यैव भयादेके वर्त्मनि स्थिताः।।''[2]

राजदण्ड, यमयातना तथा जनमत के भय से लोग पाप नहीं करते। मनु, याज्ञवल्क्य, बृहस्पति आदि स्मृतिकारों ने दण्ड की चार विधियाँ बताई हैं- मधुर उपदेश, कड़ी झिड़की, शारीरिक दण्ड एवं अर्थदण्ड। राष्ट्र दण्ड विधान की कठोरता या मृदुता से राष्ट्र के मूलभूत चरित्र का पता चलता है। अतः देखा जा सकता है कि प्रथम दो दण्ड प्राचीन भारतीय दण्ड विधान की प्रगतिशील और उदारवादी स्वरूप की ओर संकेत करते हैं। धर्मशास्त्र के निर्देशों के अनुसार एक ही प्रकार के अपराध में एक ही प्रकार का दण्ड अपराधी के पिछले कार्य, मनःस्थिति, उसकी विशेषताएँ आदि को देखकर लागू किया जाता था।

महाभारत के शांति पर्व के 267वें अध्याय में द्युमत्सेन और उनके पुत्र सत्यवान का संवाद अत्यंत महत्वपूर्ण है। राजकुमार सत्यवान ने अभियुक्त के परिवार पर पड़ने वाले प्रभाव की दृष्टि से मृत्युदण्ड का विरोध कर हल्के दण्ड का पक्ष समर्थन किया है-

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र/प्रथम अधिकरण
2. महाभारत, शांतिपर्व 15/5-6

दस्यून निहन्ति वै राजा भूयसो वाप्यनागसः।
भार्या माता पिता पुत्रो हन्यन्ते पुरुषेण ते।
परेणापकृतो राजा तस्मात् सम्यक प्रधारयेत्।।[1]

''अर्थात् राजा डाकुओं अथवा दूसरे बहुत से निरपराध मनुष्यों को मार डालता है और इस प्रकार उसके द्वारा मारे गये पुरुष के पिता-माता, स्त्री और पुत्र आदि भी जीविका का कोई उपाय न रह जाने के कारण मानो मार दिये जाते हैं। अतः किसी दूसरे के अपकार करने पर राजा को भलीभाँति विचार करना चाहिए (जल्दबाजी करके किसी को प्राण दण्ड नहीं देना चाहिए)।''

कौटिल्य (4/11) ने तीखे आयुध द्वारा हत्या के मामले में ही मृत्युदण्ड देने का परामर्श दिया है। स्मृतिकार हारीत द्वारा आग लगाने वालों, विष देने वालों, हत्यारों, डकैतों, दुराचारियों के लिए मृत्युदण्ड का प्रावधान किया गया है। हमारे प्राचीन विधिग्रंथों में स्त्रियों को मृत्युदण्ड दिये जाने के संबंध में अन्य विकल्पों का भी प्रावधान किया गया है। चूँकि हमारी धर्म शास्त्रीय विधि व्यवहारिक पुट लिये हुये है, अतः इसे काल्पनिक मानना उचित नहीं है।

डॉ. राम निवास तिवारी ने अपने ग्रंथ ''हिन्दू विधिविवेक'' में भारतीय समाज में, भारतीय परम्परा में, धर्म शास्त्र व न्याय शास्त्र के सभी सिद्धांतों के समन्वय पर प्रकाश डाला है।

समाज में एक ऐसी भी अवस्था थी जब न कोई राज्य न राजा था। सभी लोग धर्म के द्वारा स्वतः शासित थे।

न वै राज्यं न राजाऽऽसीन्न च दण्डो न दाण्डिकः।
धर्मेणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्।।[2]

''अर्थात् पहले न कोई राज्य था, न राजा, न दण्ड था और न दण्ड देने वाला, समस्त प्रजा धर्म के द्वारा ही एक दूसरे की रक्षा करती थी।''

डॉ. राम निवास तिवारी ने अपने उपरोक्त ग्रंथ में टैगोर लॉ का उदाहरण दिया है।

---

1. महाभारत, शांतिपर्व 267/10
2. महाभारत, शांतिपर्व 59/14

''भारत की तुलना में अन्य स्थानों पर, यह पाया गया है कि एक पुराने कानून को समाप्त करने की तुलना में स्पष्ट करना ज्यादा आसान है, और कई यूरोपीय देशों के न्यायविदों ने भारतीय पंडितों द्वारा किये गए आविष्कारों के अनुरूप व्याख्याओं का सहारा लिया है।''[1]

डॉ. राम निवास तिवारी ने पुनः इसी ग्रंथ में उल्लेख किया है-

प्राचीन भारतीय न्यायपालिका एक सफल प्रयोग है। उसे मात्र आदर्शवादी एवं काल्पनिक नहीं कहा जा सकता। जॉली ने 'हिन्दू लॉ एण्ड कस्टम' के अन्त में भारत के अतिरिक्त श्रीलंका, वर्मा आदि देशों में भारतीय न्यायपालिका का प्रयोग दिखलाया है। यूनानी लेखकों के विचार संकलित करते हुए मोनहन ने दिखाया है कि भारतीय न्यायपालिका पूर्णरूप से व्यवहार में आ चुकी थी। जायसवाल मेगस्थनीज के विवरण से सिद्ध करते हैं कि कौटिल्य की विधि व्यवहार में थी। फाह्यान और ह्वेनसांग ने चीनी व्यवस्था के साथ भारतीय न्यायपालिका की तुलना करते हुए भारतीय व्यवस्था की व्यावहारिकता दिखाई है। मृच्छकटिक में न्यायालय का व्यावहारिक रूप सामने आ जाता है। राजतरंगिणी के विवरण पर टीका करते हुए स्टाइन ने लिखा है कि कल्हण ने न्यायिक प्रशासन के संबंध में जो देखा है वही लिखा है। उसमें कल्पना नहीं है। श्री नीलकांत शास्त्री ने विदेशी यात्रियों के विवरण पर दक्षिण भारत में न्यायिक व्यवस्था का प्रयोग प्रस्तुत किया है। श्री रंगस्वामी आयंगर ने अपनी पुस्तक के परिशिष्ट में ऐतिहासिक प्रमाण के श्रोत दिये हैं। सेलतोर ने अपनी अंतिम पुस्तक में इस अंश के विपुल प्रमाण दिये हैं। वस्तुतः स्लीमैन का यह वाक्य हमें भारतीय समाज-शक्ति की ओर ले जाता है जो न्यायपालिका का मूल है- ''भारतीय पीपल के पेड़ के नीचे बैठकर जो विवाद सुलझा लेते थे, बाद में उसके ही लिए वे लंदन तक दौड़ने लगे।'' वास्तव में पीपल का वृक्ष तथा शिवालय का चबूतरा दैवी शक्ति की उपस्थिति का भान कराता है और शपथ द्वारा उन्हीं के भय से लोग झूठ बोलने से डरकर सत्य बात कहते थे। आज भी यह अस्तोन्मुख प्रक्रिया जीवंत है किन्तु आधुनिक विधि के घातक आक्रमण ने इसे अतीत के गर्त में डालने में कोई कोर कसर नहीं रखा है।

---

1. डॉ. जॉली, लॉ लेक्चर-34

भारतीय न्याय का आधार यह था कि हम दूसरों के साथ वही आचरण करें जो आचरण दूसरों से अपने लिए चाहते हैं।

हमारी संस्कृति में विद्वानों का सम्मान सर्वोच्च था, मात्र संख्या के बल पर कोई निर्णय उचित नहीं था, मनु स्मृति में उल्लेख है-

एकोऽपि वेदविद्धर्मं व्यवस्येत् द्विजोत्तमः।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः।।[1]

''मनु का पुनः कथन है कि एक भी वेदतत्वज्ञ, अर्थात् पुराण, न्याय, मीमांसा धर्मशास्त्र तथा सांगवेदों का ज्ञाता विद्वान यदि धर्म निर्णय करे तो वह दश सहस्त्र मूर्खों के निर्णय से अत्यंत उत्कृष्ट है।''

शूद्रयोनौ हि जातस्य सद्गुणानुपतिष्ठतः।
वैश्यत्वं लभते ब्रह्मन् क्षत्रियत्वं तर्थव च।।[2]

''अर्थात् ब्रह्मन! शूद्रयोनि में उत्पन्न मनुष्य भी यदि उत्तम गुणों का आश्रय लें, तो यह वैश्य तथा क्षत्रिय भाव को प्राप्त कर लेता है।''

महाभारत के शांति पर्व के 121वें अध्याय में उल्लेख है।

यश्च दण्डः स दृष्टो ने व्यवहारः सनातनः।
व्यवहारश्च दृष्टो यः स वेद इति निश्चितम्।।[3]

''अर्थात् जो दण्ड है, वही हमारी दृष्टि में सनातन व्यवहार है। जो व्यवहार देख गया है, वही वेद है, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है।''

चूँकि संविधान ही समस्त विधि-विधानों का मूल होता है और राज्य दंड की शक्ति से विभिन्न विधियों के द्वारा राज्य का शासन चलता है। अस्तु Constitutional jurisprudence के क्षेत्र में भारतीय परम्परायें अत्यंत पुष्ट थीं।

मानवता के सर्वोच्च स्तर की व्याख्या श्रीमद्भगवत गीता के 12वें अध्याय के 15वें श्लोक में की गयी है। यह मानवता, न्याय व आध्यात्म की भारतीय अस्मिता का निष्कर्ष माना जा सकता है।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।

---

1. मनु 12/113
2. महाभारत, वनपर्व 212/11
3. महाभारत, शांतिपर्व 121/56

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।

''अर्थात् जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादि से रहित है- वह भक्त मुझको प्रिय है।''

विधि और न्याय के क्षेत्र में भारतीय अस्मिता की निरंतरता के संबंध में विभिन्न उद्धरणों एवं साक्ष्यों के आधार पर समग्र दृष्टि डालने से भारतीय विधि एवं न्याय व्यवस्था की संरचना पर जो प्रकाश पड़ता है, उससे इस अवधारणा को पूर्णतः नकारा जाना चाहिए कि भारतीय संविधान तथा विधि और न्याय व्यवस्था, विदेशी संविधानों और विदेशी कानूनों पर आधारित है। वस्तुतः इनके बीज एवं मूल तत्व हमारी जीवन प्रणाली, सांस्कृतिक परम्पराओं एवं सामाजिक जीवन में उपलब्ध है, जो कि उपरोक्त उद्धरणों के प्रकाश से पूर्णतः प्रमाणित है।

भारत के संविधान के उद्देशिका में स्पष्टतः उल्लेख है-

''हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तरीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।'' यद्यपि समाजवादी, पंथ निरपेक्ष संविधान के 42वें संविधान संशोधन द्वारा बाद में डाले गये।

भारत की सम्पूर्ण चिंतन परंपरा में संविधान के इस उद्देशिका की मूल भावना परिलक्षित होती है। हमारे राष्ट्रीय संगठन का ताना-बाना वैदिक काल से ऐसा बुना गया जो आज तक अक्षुण्ण रूप से चला आ रहा है।

राष्ट्रीय संगठन बंधुता के विषय में ऋग्वेद के दशम् मंडल के 191वें सूक्त में उल्लेख है-

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।[1]

''अर्थात् हे स्त्रोताओं! तुम परस्पर एक विचार से मिलकर रहो, परस्पर मिलकर प्रेम से वार्तालाप करो। तुम लोगों का मन समान होकर ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार पूर्व के लोग एक मत होकर ज्ञान सम्पादन करते हुए सेवनीय ईश्वर की उत्तम प्रकार से उपासना करते हैं, उसी प्रकार तुम भी एकमत होकर अपना कार्य करो- धनादि ग्रहण करो।''

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।[2]

''अर्थात् हम सब की प्रार्थना एक समान हो, परस्पर मिलन भी भेदभाव से रहित एक सा हो, विचार प्रदान का स्थान एक ही हो। अपना मन मनन करने का साधन अन्तःकरण और चित्त विचार जन्य ज्ञान एकविध हों। मैं तुम्हें एक ही उत्कृष्ट रहस्यपूर्ण वचन कहता हूँ और तुम्हें एक समान हवि प्रदान करके सुसंस्कृत करता हूँ।''

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[3]

''अर्थात् तुम्हारा संकल्प एक समान रहे और तुम्हारे हृदय एकविध एक समान हों। तुम्हारे मन एक समान हों, जिससे तुम्हारे परस्पर कार्य पूर्णरूप से संगठित हों।''

एतैव भारत का संविधान भारत के हर नागरिक का धर्मग्रन्थ है तथा हमारी संविधान का ढांचा हमारी संस्कृति एवं परम्परा के पूर्णता अनुकूल है तथा दोनों में साम्य है। हमारे संविधान निर्माता हमारी सांस्कृतिक धरोहर से पूर्ण रूप से परिचित थे एवं संविधान सभा द्वारा जिस स्वीकृत संविधान प्रति पर उन्होंने हस्ताक्षर किया, उसमें 22 चित्रों का समावेश किया, जो भारतीय इतिहास के विभिन्न काल व युगों का बोध कराते हैं। भगवान राम, कृष्ण, गीता, हनुमान, बुद्ध, महावीर और साथ ही साथ गुरुकुल व नालंदा विश्वविद्यालय इन चित्रों के माध्यम से हमारा मानस परिलक्षित होता है।

*****

1. ऋग्वेद 10/191/2
2. ऋग्वेद 10/191/3
3. ऋग्वेद 10/191/4

भारतीय अस्मिता की शिक्षा में निरन्तरता

प्रो0 कल्पलता पाण्डेय[1]

पृथ्वी का ऐसा भू-भाग जिस पर कोई अन्य जाति या प्रजा पुत्र रूप में निवास कर रही हो अर्थात् उस प्रजा का उस भू-भाग के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध हो, जिस प्रकार किसी अन्य का न हो, ऐसे भू-भाग एवं प्रजा के योग को राष्ट्र की संज्ञा दी जाती है।

अथर्ववेद के पृथिवी सूक्तम् के 12वें सूक्त में भारत भूमि के विषय में कहा गया है-

यत ते मध्यं पृथिवि यच्च न भ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवः।
तासु नो धेह्यायाभि न पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तुः।।12।।

अर्थात हे पृथिवि! जो तुम्हारा मध्य भाग (जम्बूद्वीप) है, जो नाभिभाग (भारतवर्ष) है, जो शक्ति से सम्पन्न तुम्हारे शरीर का पुण्य क्षेत्र है, उनमें हमें प्रतिष्ठित करो और हमारी ओर प्रवाहित करो या हमारे दोषों को दूर करो। भूमि (पृथिवी) मेरी माता है, मैं पृथिवी का पुत्र हूँ, पर्जन्य हमारे पिता हैं। वह हमारा पालन करें अथवा हमारी इच्छा को पूर्ण करें। विशेष रूप से इस मंत्र में कहा गया है- हे पृथिवी! जो तुम्हारा मध्य जम्बूद्वीप और नाभि स्थानीय भारत वर्ष है तथा जो बल एवं प्राण शक्ति से सम्पन्न पुण्य क्षेत्र है, उनमें हमें प्रतिष्ठित करो और

---

1. आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, म.गां, काशी विद्यापीठ, वाराणसी

हमारे दोषों को दूर करो। पृथिवी मेरी माता है, मैं पृथिवी का पुत्र हूँ, पर्जन्य हमारे पिता हैं। वे हमारी इच्छाओं की पूर्ति करें।

भारत शब्द को इस प्रकार समझा जा सकता है 'भा' अर्थात् प्रकाश और 'रत' का अर्थ है उसकी ओर प्रवृत्त अर्थात् प्रकाश की ओर जो प्रवृत्त है, वह भारत है।

पुराणकारों ने भारत वर्ष की व्याख्या जब की तो यह केवल भूमिपरक ही नहीं अपितु जनपरक एवं संस्कृति परक भी थी। कहा गया है-

उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे।
वर्ष तद् भारतं नाम भारती यस्य संततिः।।[1]

अतः हमने भूमि, जन और संस्कृति को एक दूसरे से भिन्न नहीं किया, अपितु उनकी एकात्मा की अनुभूति के द्वारा राष्ट्र का साक्षात्कार किया। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने भारत को समझने के लिए सांस्कृतिक पैमाने को अधिक महत्वपूर्ण मानते हुए कहा ''भारत की आत्मा को यदि समझना है तो उसे राजनीति अथवा अर्थनीति के चश्में से न देखकर सांस्कृतिक दृष्टिकोण से देखना होगा। विश्व को हम यदि कुछ सिखा सकते हैं तो उसे अपनी सांस्कृतिक सहिष्णुता एवं कर्त्तव्य प्रधान जीवन की भावना की ही शिक्षा दे सकते हैं। अर्थ, काम और मोक्ष के विपरीत धर्म की प्रमुख भावना ने भोग के स्थान पर त्याग, अधिकार के स्थान पर कर्त्तव्य तथा संकुचित असहिष्णुता के स्थान पर विशाल एकात्मा प्रकट की है। इनके साथ ही हम विश्व में गौरव के साथ खड़े हो सकते हैं।''

जहाँ तक एक राष्ट्र के रूप में भारत की चिति का प्रश्न है तो उसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। चिति का अर्थ है राष्ट्र की मूल प्रकृति जिसे हम राष्ट्र का विवेक कहते हैं, राष्ट्र की आत्मा कहते हैं, उचित और अनुचित का निर्णय करने का निश्चय करते हैं, वह चिति है। यह ईश्वर का सृजन है, कोई मनुष्य इसे सृजित नहीं करता है। विभिन्न समाजों एवं राष्ट्रों को अपने-अपने सृजन के समय ईश्वर के द्वारा जो विभिन्न विशेषताएँ प्राप्त हुई हैं, वह चिति है। यह राष्ट्र की आत्मा होती है। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक राष्ट्र स्वतंत्र रहकर

1. विष्णु पुराण - 2/3/1

अपने स्व को पहचाने एवं उसे संरक्षित करे, क्योंकि स्वतंत्रता का अर्थ है स्व को पहचानना एवं मूल पहचान का संरक्षण और संवर्द्धन। यह इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि जो राष्ट्र अपनी पहचान, अपनी विशिष्टताओं को विस्मृत कर देते हैं या हो जाने देते हैं, उन्हें जीवनभर अपनी पहचान के लिए संघर्षरत रहना पड़ता है।

चिति के साथ ही एक-दूसरे शब्द का प्रयोग होता है। वह शब्द है 'विराट'। विराट को महापुरुषों ने राष्ट्र का प्राण माना है। जिस प्रकार प्राण के बिना शरीर नहीं चल सकता उसी प्रकार राष्ट्र को प्राणवान बनाये रखने के लिए विराट अर्थात् समष्टि की प्राकृतिक क्षात्रशक्ति को जागृत करना आवश्यक है। विराट के महत्वपूर्ण घटक है देश में कार्यरत विभिन्न संस्थायें, भौगोलिक परिस्थितियाँ, वर्णाश्रम व्यवस्था आदि। शिक्षा विराट का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक है। यदि राष्ट्र को प्राणवान बनाए रखना है तो पाठ्यक्रम, पाठ्य सामग्री, पठन पद्धति, शिक्षा का तंत्र, शिक्षा के संदर्भ, उसके उद्देश्य, शिक्षक, शिक्षणतंत्र, विद्यार्थी आदि सब राष्ट्र की चिति अर्थात उसके आत्मा के अनुकूल और विराट द्वारा अनुप्राणित होने आवश्यक हैं क्योंकि चिति अर्थात् उस राष्ट्रीय चेतना का अस्तित्व, राष्ट्र का अस्तित्व होता है। चिति के क्षीण होते ही राष्ट्र दुर्बल हो जाता है। चिति का पूर्णतः लोप होते ही राष्ट्र का भी लोप हो जाता है। इसके विपरीत यदि चिति शक्तिमान हो तो राष्ट्र का चौमुखी विकास होता है। प्रत्येक राष्ट्र की चिति उसका जीवन लक्ष्य होता है। राष्ट्र में उसके जीवन लक्ष्य के अनुसार सर्वांगीण जीवन चलता रहे तो राष्ट्र परम सुख का अनुभव करता है।

विराट के महत्वपूर्ण घटक के रूप में शिक्षा को राष्ट्र की प्राकृतिक क्षात्र शक्ति माना जा सकता है। किसी भी राष्ट्र को जीवन्त बनाए रखने, उसके नागरिकों की चिति को राष्ट्र की चिति को जोड़ने एवं राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा आवश्यक है। शिक्षा 'शक्' धातु से युक्त है अर्थात् सकना, सामर्थ्य। अतः शिक्षा का अर्थ है समर्थ होना। शिक्षा हमें यह सामर्थ्य प्रदान करती है कि हम सबके साथ किस प्रकार सामंजस्य एवं सामरस्य के साथ चल सकें। शिक्षा हमें यह सिखाती है कि किस प्रकार तमाम विपरीत परिस्थितियों में भी स्वयं को ठीक रास्ते पर चलाते हुए लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। पाणिनि के अनुसार शक्लृ शिक्षति और शक् मर्पणे दोनों के सम्मत में शिक्षा पद बनता है। धातु पाठ के अनुसार शिक्षा

विद्योपादने अर्थात् शिक्षा धातु का प्रयोग उपादान अर्थात् ग्रहण करने के अर्थ में होता है। 'शिक्षेर्जिज्ञासायाम्' वार्तिक के अनुसार शिक्षा का मूल जिज्ञासा है। ऋग्वेद में 'शिक्ष्' धातु का प्रयोग देना अर्थ में हुआ है। (तैलंग 2013)। चाणक्य ने शिक्षा, विनय और ज्ञान को इन्द्रियों को जीतने का आधार मानते हुए अहिंसा, सत्य, काय वचन मन की शुद्धि, परदोष दर्शनाभाव (गुण पक्षपातित्व), दयालुता, क्षमा आदि गुणों के शिक्षार्थी में पल्लवन को अनिवार्य बताया है। कौटिल्य का अभिमत है कि धर्म-अविरुद्ध जीवन की स्थापना ही शिक्षा का सहज उद्देश्य है।

आचार्य शुक्र ने शिक्षा का तात्पर्य इन्द्रिय निग्रह, शास्त्र, रमन, नीति और विनय माना है। याज्ञवल्क्य के अनुसार अध्यात्म भाव, त्याग, वैराग्य और सद्गुणशीलता को शिक्षा द्वारा मनुष्य की सम्पदा बनाना चाहिए।

अतः सार रूप में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा का कार्य व्यक्ति को धर्मानुरूप आचरण करने की ओर प्रवृत्त करना है। यह व्यष्टि, समष्टि सामंजस्य और सामरस्य का प्रणिपात करती है। यह सही रास्ते पर चलते हुए अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचने का सामर्थ्य प्रदान करती है। यह ग्रहण करने की प्रवृत्ति विकसित करती है, जिज्ञासु बनाती है तथा इन्द्रिय निग्रह, विनय, अहिंसा, मनसा वाचा कर्मणा शुद्धि, दयालुता, क्षमा, एकात्मता आदि सद्गुणों को विकसित करने का सशक्त माध्यम है। इसीलिए इसका विकास वेदों के स्वरूप की मौखिक परम्परा से रक्षा करने के लिए हुआ। 'शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्' अर्थात् व्याकरण शास्त्र वेद पुरुष का मुख और शिक्षा नासिका के रूप में शोभायमान हुई।

जैसा कि पूर्व में वर्णित है, राष्ट्र की प्राण शक्ति विराट के महत्वपूर्ण घटक के रूप में शिक्षा मानी गई है। शिक्षा पर यह गुरुतर दायित्व है कि वह राष्ट्र की चिति के अनुरूप भारतीय संतति, स्वरूप एवं प्रकृति को संवर्धित करे। शिक्षा के अंग-उपांग के रूप में गुरु, शिष्य, उनमें परस्पर सम्बन्ध, विद्यालय, पाठ्यक्रम शील (सदाचरण), आदि माने जाते हैं। इसमें सर्वोपरि है गुरु, क्योंकि चाहे किसी भी प्रकार की सुविधा सम्पन्नता दे दी जाय, कितना ही अच्छा वातावरण दे दिया जाय किन्तु शिक्षा के केन्द्र में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से विद्यमान गुरु यदि योग्य नहीं है, नाम मात्र का गुरु है तो वे सारी व्यवस्थाएँ भी भारतीय नागरिक

निर्माण के शिक्षा के प्रमुख लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकती हैं। यहाँ यह विचार करना समीचीन होगा कि वस्तुतः शिक्षा के अंग-उपांग तब कैसे थे जब भारतीय 'चिति' और 'विराट' से भारतवंशियों की व्यक्तिगत 'चिति' और 'विराट' एकात्म थी। इन अंग-उपांगों में ऐसी कौन सी विशिष्टताएँ थीं जिनके कारण भारत विश्व गुरु की पदवी प्राप्त कर विश्व सन्मार्ग दिखाने का सामर्थ्य अर्जित कर सका। क्यों आधुनिक शिक्षा व्यवस्था आसुरी विराट के मकड़ जाल में फँस कर निस्तेज होती जा रही है? ऐसे अनेक प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए वेदों, पुराणों, आरण्यकों, स्मृतियों, आदि पवित्र ग्रन्थों का अवगाहन अत्यन्त आवश्यक है।

शिक्षा द्वारा मनुष्य के भीतर की मौलिकता के प्रकटीकरण का कार्य जो करता है, वह गुरु है। भारत में, विशेष रूप से वैदिक भारत में गुरु को साक्षात् परमेश्वर माना गया है एवं इनकी महिमा का वर्णन अत्यन्त मनोयोग से किया गया है। गुरु शब्द के अर्थ की व्याख्या करते हुए श्रीगुरुगीता में श्री महादेव स्वयं कहते हैं-

गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधित्वाद् गुरुरित्यभिधीयते।।16।।
गुकारः प्रथमो वर्णो मायादिगुणभासकः।
रुकारो द्वितीयो ब्रह्म मायाभ्रान्तिविमोचकः।।17।।
गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य दाहकः।
उकारः शम्भुरित्युक्तास्त्रितयाऽऽत्मा गुरुः स्मृतः।।18।।[1]

(गु शब्द का अर्थ अन्धकार और रु शब्द का अर्थ तम का नाश करना है। इस कारण जो अज्ञान रूप अन्धकार का नाश करते हैं वे ही गुरु शब्द वाच्य हैं। गुरु इस शब्द के प्रथम वर्ण गु से माया आदि गुण प्रकाशित होता है और द्वितीय वर्ण रू से ब्रह्म में जो माया का भ्रम है, उसका नाश होता है, इस कारण गु शब्द सगुण को और रु शब्द निर्गुण अवस्था को प्रतिपन्न करके गुरु शब्द बना है। गकार का अर्थ सिद्धिदाता, रकार का अर्थ पापहर्ता और उकार का अर्थ शिव है अर्थात् सिद्धिदाता शिव और पापहर्ता शिव ऐसा ग-3 बोधक गुरु शब्द से समझना उचित है।)

1. Sanskritdocuments.org/doc_giitaa

गुरु के श्रेष्ठ होने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए श्री गुरूगीता में कहा गया है-

जन्महेतु हि पितरौ पूजनीयौ प्रयत्नतः।
गुरुर्विशेषतः पूज्यो धर्माऽधर्मप्रदर्शकः।।30।।
गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः।।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टै न कश्चन्।।31।।

(माता और पिता जन्म देने के कारण पूजनीय हैं किन्तु गुरु धर्म और अधर्म का ज्ञान कराने वाले हैं। इस कारण उनका पूजन पितृगण से भी अधिक यत्न करके करना उचित है। गुरु ही पिता हैं, गुरु ही माता हैं, गुरु ही देवता हैं, गुरु ही सद्गतिरूप हैं। परमेश्वर के रुष्ट होने पर तो गुरु बचाने वाले हैं परन्तु गुरु के अप्रसन्न होने पर कोई भी त्राणदाता नहीं है।)

गुरु की महिमा एवं उनकी श्रेष्ठता का वर्णन करने के साथ ही यह भी बताया गया है कि गुरु की श्रेष्ठता किस प्रकार निर्धारित की जाये। इस प्रकारण में श्री महादेव कहते हैं-

सर्वशास्त्रपरो दक्षः सर्वशास्त्रार्थवित्सदा।
सुवचाः सुन्दरः स्वङ्गः कुलीनः शुभदर्शनः।।
जितेन्द्रियः सत्यवादी ब्राह्मणः शान्तमानसः।
मातृपितृहिते युक्तः सर्वकर्मपरायणः।।[1]

(सर्वशास्त्रों में पारंगत, चतुर, सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्त्ववेत्ता और मधुर वाक्य भाषण करने वाले, सब अंगों से पूर्ण और सुन्दर, कुलीन अर्थात् सत्कुलोद्भव और दर्शन करने में मंगल मूर्ति हों। जिनकी सब इन्द्रियाँ अपने वशीभूत हों, सर्वदा सत्य भाषण करने वाले हों, ब्राह्मण हों, शान्त मानस अर्थात् जिनका मन कभी चंचल नहीं होता हो, माता-पिता के समान हित करने वाले हों, सम्पूर्ण कर्मों के अनुष्ठानशील हों।)

वेदों में वर्णित मंत्रों में आचार्य गुरु को उसके अपेक्षित गुणों के आधार पर महिमा मंडित किया गया है। आचार्य की व्याख्या करते हुए अथर्ववेद में कहा

1. गुरु गीता - 34-35 (Sanskritdocuments.org)

गया है-

आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः।[1]

अर्थात् आचार्य मृत्यु (यम) है, आचार्य वरुण है, आचार्य सोम है, आचार्य औषधि है, आचार्य दूध है।

दूसरे शब्दों में आचार्य को विद्यार्थी की दुष्प्रवृत्तियों को नष्ट करने वाला (यम), विद्यार्थी की गतिविधियों का नियंत्रित करने एवं उस पर कड़ी दृष्टि रखने वाला (वरुण), आकर्षक व्यक्तित्व का स्वामी एवं लोकप्रिय (सोम), विद्यार्थी की शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं को संवर्द्धित करने वाला (औषधि) एवं उन्हें नवीन ज्ञान से निरन्तर सम्पुष्ट करने वाला (पयः) आदि गुणों से युक्त बताया।

अथर्ववेद के निम्नांकित मंत्र में भारतीय परम्परा के अध्यापक के विषय में कहा गया है-

आचार्यों ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिछते।[2]

आचार्य स्वयं ब्रह्मचारी रहता हुआ ही छात्रों को विद्यमान करने की इच्छा करे। वेदों में ब्रह्मचर्य शब्द का बहुत विस्तृत अर्थ लिया गया है। मुख्य रूप से इस शब्द में तीन अर्थ अन्तर्निहित हैं- (1) ईश्वर विश्वास, (2) विद्वता और (3) संयम। इन तीनों गुणों से युक्त अध्यापक ही विद्यार्थियों को राष्ट्र का उत्तम अवयव (नागरिक) बन सकता है।

आचार्य अथवा गुरु कैसा हो, इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि राष्ट्र में उसका क्या उपयोग है? उसका उपयोग है राष्ट्र को शिक्षित करना। राष्ट्र की शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्र के ऐसे नागरिक तैयार करना है, जो न केवल अपना या अपने परिवार का पेट भरने के योग्य हों और न केवल किसी पेशे में सफलता प्राप्त करने का सामर्थ्य रखते हों, अपितु उनका चरित्र ऐसा दृढ़ हो कि उनके कारण राष्ट्र को बल मिले। ऐसे चरित्रवान नागरिकों को तैयार करना चरित्रवान, विद्वान और संयमी गुरुओं के बिना सम्भव नहीं है।

---

1. अथर्ववेद 11/5/14
2. अथर्ववेद 11/5/17

वायु पुराण में आचार्य का एक गम्भीर लक्षण दिया गया है, यथा-

वृद्धा ह्यलोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदम्भकाः।
सम्यग्विनीता ऋजवः तान् आचार्यन् प्रचक्षते।।[1]

अर्थात् जो वृद्ध (वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध), लोभहीन, आत्मवान् दम्भशून्य, विनीत और सरल स्वभाव वाले हैं,वे आचार्य कहलाते हैं। विद्या के क्षेत्र में आचार्य को कैसा होना चाहिए इस विषय में पुराण में कहा गया है-

स्वयमाचरते यस्माद् आचार स्थापयत्यपि।
आचिनोति च शस्त्रार्थान् यमैः सनियमैर्युतः।।[2]

अर्थात् जो स्वयं अपनी विद्या के अनुकूल आचरण करते हैं, विद्यार्थियों का आचार में स्थापन करते हैं और यम-नियम-शील होकर शास्त्रीय अर्थों की उत्पत्ति करते हैं, वे आचार्य हैं। इसमें तीन विशिष्ट कार्य कहे गये हैं- (1) स्वयमाचरण, (2) दूसरों को आचरण सिखाना, (3) शास्त्र ज्ञान का अभ्यास करना।

निरुक्त में भगवान यास्क ने कहा है-

आचार्यः आचारं ग्राह्यति, आचिनोत्यर्थान्
आचिनोति बुद्धिमति वा।[3]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आचार्य के तीन गुण होते हैं- (1) शास्त्रों की मनन योग्यता, (2) शिष्य में ज्ञान आहित करने की योग्यता और (3) स्वयं आचार सम्पन्न होना।

भारतीय परम्परा के अनुसार विद्या पढ़ना अपने आप में जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है। असली लक्ष्य है- पूर्ण मनुष्य का निर्माण विद्याध्ययन उसमें सहायक होने के कारण ही उपादेय है। सच्चा आचार्य वह है जो छात्रों को आचारवान, ज्ञानी और तपस्वी बनाए। इस ऊँचे कर्त्तव्य का पालन करने के लिए यह आवश्यक है कि वह स्वयं सच्चा आस्तिक, विद्वान और चरित्रवान हो।

शिक्षा के दूसरे घटक शिष्य के गुणों का वर्णन करते हुए श्रीगुरु गीता

1. वायु पुराण - 59/29
2. वायु पुराण - 59/30
3. निरुक्त - 1/2/2

में कहा गया है-

शिष्यः कुलीनः शुद्धाऽऽत्मा पुरुषार्थ परायणः।
अधीतवेदः कुशलो दूरमुक्तमनोभवः।।

हितैषी प्राणिनां नित्यमास्तिकस्तयक्तवंचनः।
स्वधर्मनिरतो भक्तया पितृमातृहिते स्थितः।।

गुरुशुश्रूषणरतो वाङम्नःकायकर्मभिः।
शिष्यस्तु स गुणैर्युक्तो गुरुभक्तिरतः सदा।

धर्मकामादिसंयुक्तो गुरुमन्त्रपरायणः।
सत्यबुद्धिर्गुरोमन्त्रे देवपूजनतत्परः।।

गुरुपदिष्टमार्गे च सत्यबुद्धिरुदारधीः।
अलुब्धः स्थिरगात्रश्च आज्ञाकारी जितेन्द्रियः।।

एवंविधो भवेच्छिष्य इतरो दुःखकृद्गुरोः।।[1]

अर्थात् शिष्य कुलीन, शुद्धात्मा और पुरुषार्थ परायण होना चाहिए। वह अधीतवेद हो, कुशल हो, कामी न हो, भक्ति पूर्वक माता-पिता के हित में स्थित हो। मन, वचन और शरीर तथा कर्मों से गुरुसेवा परायण हो। गुणसम्पन्न हो, गुरुभक्त हो, धर्मादि सम्पन्न हो, गुरुदत्त मंत्र के जपादि में प्रवृत्त हो। गुरुदत्त मंत्र में श्रद्धालु हो, देवपूजा परायण हो, गुरुपदिष्ट मार्ग में सत्यबुद्धि हो, उदार हो। लोभी न हो, शरीर जिसका चंचल न हो, गुरु का आज्ञाकारी हो, जितेन्द्रिय हो, इस प्रकार का शिष्य होना चाहिए। इसके विपरीत गुण का होने पर वह गुरु को दुःख देने वाला होगा। इसी क्रम में आगे वर्णित है-

1. श्रीगुरु गीता - 51, 52, 53, 54, 55, 56

शरीरमर्थ प्राणाँश्च गुरुभ्यो यः समर्पयन्।।
गुरुभिः शिष्यते योगं स शिष्य इति कथ्यते।[1]

गुरु के लिए शरीर, अर्थ और प्राणों तक अर्पण करके गुरु से शिक्षा प्राप्त करता है, इसी कारण वह शिष्य कहा जाता है।

यहाँ पर शिष्य के लिए आचार संहिता का भी विस्तृत वर्णन है जो यह इंगित करने के लिए पर्याप्त है कि शिष्य की दृष्टि से गुरु के इतर कुछ भी नहीं है। उसके सम्पूर्ण जीवन की सार्थकता गुरु की सेवा और स्वयं को उनके चरणों में समर्पित करने में ही निहित है। इसीलिए षोडश संस्कारों के अष्टम संस्कार अर्थात् वेदाध्ययन (उपनयन) संस्कार को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। यह संस्कार ही गुरु-शिष्य सम्बन्ध का आरम्भ बिन्दु है।

इसी प्रकार शिक्षा की समाप्ति पर आयोजित समावर्तन के साथ गुरु अपने शिष्य को उपदेश देते हुए कहते हैं-

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।
मातृदेवो भव। पितृदेवोभव। आचार्यदेवोभव।।
यान्यस्माकं सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।।[2]

(सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो, नित्य स्वाध्याय में प्रवृत्त हो, माता-पिता एवं आचार्य को देवतुल्य समझो, यही शिक्षा का मूल-मंत्र है इत्यादि।)

इस प्रकार उपनयन संस्कार से लेकर समावर्तन संस्कार तक गुरु-शिष्य एक दूसरे के हित चिन्तन में सर्वदा संलग्न प्रतीत होते हैं। इन संस्कारों द्वारा गुरु-शिष्य एक दूसरे से एक ऐसे सम्बन्ध में बँध जाते हैं जिसके समक्ष अन्य सभी सम्बन्ध चाहे कितने भी निकटतम क्यों न हों पीछे रह जाते हैं। इसलिए विभिन्न प्रार्थनाओं में भी गुरु-शिष्य दोनों के साथ-साथ जीवन जीने, आगे बढ़ने, वीर्यवान आदि होने की प्रार्थना ईश्वर से करते हैं। ऐसी कुछ प्रार्थनाओं का उल्लेख यहाँ पर करना गुरु-शिष्य सम्बन्ध की गहराई को समझने के लिए आवश्यक है। कठोपनिषद् के शान्तिपाठ के शिष्य परमात्मा से प्रार्थना करते हुए कहता है-

---

1. श्रीगुरु गीता - 56-57
2. तैत्तरीय उपनिषद ।।14।।

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु।
सहवीर्यंकरवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।
ॐ शान्ति! शान्ति!! शान्तिः!!!

अर्थात् हे परमात्मन्! आप हम गुरु-शिष्य दोनों की साथ-साथ सब प्रकार से रक्षा करें, हम दोनों का आप साथ-साथ समुचित रूप से पालन-पोषण करें, हम दोनों साथ ही साथ सब प्रकार से बल प्राप्त करें, हम दोनों की अध्ययन की हुई विद्या तेजपूर्ण हो, कहीं किसी से हम विद्या में परास्त न हों और हम दोनों जीवन भर परस्पर स्नेह सूत्र में बँधे रहें, हमारे अन्दर कभी द्वेष न हो। हे परमात्मन! तीनों तापों की निवृत्ति हो।

इसी प्रकार प्रश्नोपनिषद् के शान्ति पाठ में कहा गया है।

ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रुणुयाम देवाः।
भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवागं सस्तनूभिः।
व्यशेम देवहितम् यदायुः।
स्वस्ति न इन्द्रो वृहश्रवाः।
स्वस्ति नः पूषाः विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः।
स्वस्तिनो बिहस्पतिर्दधातु।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

उपर्युक्त मंत्रों की व्याख्या इस प्रकार है- गुरु के यहाँ अध्ययन करने वाले शिष्य अपने गुरु, सहपाठी तथा मानव मात्र का कल्याण चिन्तन करते हुए देवताओं से प्रार्थना करते हैं कि देवगण! हम अपने कानों से शुभ-कल्याणकारी वचन ही सुनें। न केवल कानों से सुनें, नेत्रों से भी हम सदा कल्याण का ही दर्शन करें। किसी अमंगलकारी अथवा पतन की ओर जाने वाले दृश्यों की ओर हमारी दृष्टि का आकर्षण कभी न हो। हमारे शरीर, हमारा एक-एक अवयव सुदृढ़ एवं सुपुष्ट हो। हमें ऐसी आयु मिले जो भगवान के कार्य में आ सके। जिनका सुयश सब ओर फैला है, वे देवराज इन्द्र, सर्वज्ञ पूषा, अरिष्टनिवारक ताक्ष्र्य (गरुड़) और बुद्धि के स्वामी बृहस्पति- ये सभी हमारे कल्याण का पोषण करें इनकी कृपा

से हमारे सहित प्राणिमात्र का कल्याण होता रहे। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक सभी प्रकार के तापों की शांति हो।

ऐतरेयोपनिषद् के शान्तिपाठ में गुरु शिष्य सम्बन्ध इस प्रकार ध्वनित है-

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता। मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणिस्थः श्रुतं में मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्संदधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्।। ॐ शान्ति! शान्ति!! शान्तिः!!!

अर्थात् हे सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मन! मेरी वाणी मन में स्थित हो जाय और मन वाणी में स्थित हो जाय। अर्थात् मेरे मन वाणी एक हो जायें। मेरे संकल्प और वचन दोनों विशुद्ध होकर एक हो जायें। हे मन और वाणी! तुम दोनों मेरे लिए वेद विषयक ज्ञान की प्राप्ति कराने वाले बनो। मेरा गुरुमुख से सुना हुआ और अनुभव में आया हुआ ज्ञान मेरा त्याग न करे अर्थात् वह सर्वदा मुझे स्मरण रहे। मेरी इच्छा है कि अपने अध्ययन द्वारा मैं दिन और रात एक कर दूँ। मैं अपनी वाणी से सदा ऐसे ही शब्दों का उच्चारण करूँगा जो सर्वथा उत्तम हो, जिनमें किसी प्रकार को दोष न हो, तथा जो कुछ बोलूँगा सर्वथा सत्य बोलूँगा। वे परब्रह्म परमात्मा मेरी रक्षा करें। वे परमेश्वर मुझे ब्रह्मविद्या सिखाने वाले आचार्य की रक्षा करें। वे रक्षा करें मेरी और मेरे आचार्य की, जिससे मेरे अध्ययन में किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित न हो। तीनों प्रकार के विघ्नों से सर्वथा निवृत्ति हो।

तैत्तिरीयोपनिषद् के तृतीय अनुवाक में आचार्य अपने और शिष्य के अभ्युदय की इच्छा प्रकट करते हुए कहते हैं-

सह नौ यशः। सह नौ ब्रह्मवर्चसम्।।

अर्थात् हम आचार्य और शिष्य दोनों का यश एक साथ बढ़े। एक साथ ही हम दोनों का ब्रह्मतेज भी बढ़े।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में गुरु और शिष्य का सम्बन्ध एक ऐसा सम्बन्ध था जिसमें एक दूसरे के कल्याण के अतिरिक्त और किसी भी विचार के लिए रंचमात्र भी स्थान नहीं है। गुरु निःसंकोच सब कुछ देने को उद्यत था और शिष्य परम विनीत होकर सब कुछ अपने में समाहित करके

उस ज्ञान को अपनी अगली पीढ़ी को देकर गुरु ऋण से उऋण होने को तत्पर था। यही कारण था कि वंश परम्परा के साथ-साथ गुरु वंश परम्परा भी भारत में इतनी मजबूती से पीढ़ी दर पीढ़ी चल रही थी। गुरु की आज्ञा का पालन तत्काल करने के उदाहरण भारतीय वांग्मय में भरे पड़े हैं। गुरु पर प्रबल विश्वास के कारण ही गुरु की आज्ञा पालन करने के लिए उद्दालक खेत का बाँध बाँधने चला गया और पानी का प्रवाह जब नहीं रुका तो स्वयं मेंड बन गया। वेदान्त पढ़ रहे ब्रह्मचारी को मेड़ बनाने गुरु ने क्यों भेजा, क्योंकि उसे यह प्रत्यक्षतः समझाना था कि मन जब विपरीत दिशा में जा रहा हो तो उसका नियंत्रण कैसे करना चाहिए। इस प्रकार वेदान्त के सिद्धान्तों को ही पुष्ट करने के लिए जीवन की शिक्षा देते हुए इस बात पर बल दिया गया कि प्रयोग करो तथा अपने आप निर्णय लो। इसी प्रकार आयुर्वेद के प्रसिद्ध चिकित्सक जीवक ने अपने गुरु से कहा मेरी परीक्षा लीजिए। गुरु ने उन्हें अपने साथ गाँवों में भ्रमण करने को कहा और वहाँ उनसे प्रत्येक दवा के गुण-दोष पूछते रहे तथा उन्होंने कहा कि कोई ऐसी पत्ती या छाल लाओ जिसका कोई उपयोग न हो। जीवक को ऐसी कोई पत्ती या छाल नहीं मिली तो गुरु ने कहा कि तुमने आज सीखा कि जीवन में कोई पदार्थ हेय नहीं है। समग्र जीवन उपयोगी है (मिश्र, 1998)

श्रीमद्भगवद गीता में श्रीकृष्ण और अर्जुन के मध्य जो संवाद है वह गुरु-शिष्य सम्बन्ध का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। जिस प्रकार अर्जुन किंकर्त्तव्यविमूढ़ स्थिति में पूरी श्रद्धा एवं विश्वास के साथ योगेश्वर को पूरी तरह समर्पित हुए उतनी ही तत्परता के साथ योगेश्वर ने अपने इस परम प्रिय को शिष्य भाव से ग्रहण कर गुरु स्थानापन्न हो गये।

सार रूप में यदि कहा जाय तो गुरु-शिष्य का सम्बन्ध इतना अद्भुत और अद्वितीय था, और घनिष्ठ था कि इसकी स्मृति सदैव बनी रहती थी। जब शिष्य आगे बढ़ता था तो गुरु का स्मरण करके आगे बढ़ता था, कृतज्ञता के भाव से भरा हुआ शिष्य यह सदैव स्मरण रखता था कि मैंने यदि गुरु से शिक्षा न पाई होती तो मैं कहाँ से सीखता। यह स्मृति और आगे जाने का, गुरु के नाम को आगे बढ़ाने का उत्साह गुरु और शिष्य के मध्य निरन्तर, अटूट, अबूझ संवाद का सेतु निर्मित करता था। कभी शिष्य ने अधिगम में अवरोध अनुभव किया, तुरन्त

गुरु के पास गया, परामर्श हुआ और अवरोध समाप्त होकर प्रगति की यात्रा आगे बढ़ गई। इतनी आगे बढ़ी कि गुरु से भी आगे निकल गया। गुरु इस प्रगति से आनन्द से भर गया, क्योंकि व्यक्ति सबसे जीतने की अभिलाषा रखता है, किन्तु शिष्य और पुत्र से जब वह हारता है तो उसकी सबसे बड़ी विजय होती है।

भारत में शिक्षा का आधार परिपृष्ठ था। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा ''तद्बुद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया'' पहले तुम प्रण करो, पहले तुम विनीत हो, सीखने के लिए उत्सुक हो, यह जानो कि हम कुछ नहीं जानते, हम सीखने आये हैं। अपने मन में विनय का भाव ले आओ और फिर तुम प्रश्न करो और प्रश्न ऐसे करो जो विषय के चारो ओर नाचते हों। किसी एक दृष्टि से एक आयाम से नहीं, विविध आयामों से प्रश्न करो जिससे बात पूरी तरह समझ में आ जाए। प्रश्न किया जाता है विषय को समझने के लिए। अध्यापक इन प्रश्नों के साथ स्वयं को समझता है। इसलिए छात्र-अध्यापक का सहयोगी होता है। वह अध्यापक के विरोध में नहीं खड़ा होता है। प्रतिभागिता और संवाद के मध्य से ज्ञान की प्रक्रिया स्वायत्त रूप से चलती थी। इसके बाद जो शर्त दी गई है, वह है सेवया, सेवा करो। सेवा का अर्थ छात्र से काम लेना नहीं, इसका अर्थ है जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में स्वयं ज्ञान प्राप्त करना, छात्र को इसका अवसर उपलब्ध कराना (मिश्र, 1998)।

इस उद्धरण से गुरु-शिष्य सम्बन्ध एवं शिक्षा के द्वारा दोनों के जीवन की अन्तर्निहित मौलिकता का प्रकटीकरण स्पष्ट है। गुरु ज्ञान की आभा से दीप्त, धीर, गम्भीर, स्नेहयुक्त किन्तु अनुशासन प्रिय तथा शिष्य विनीत, गुणयुक्त, शिष्यत्व हेतु ली गई समस्त परीक्षाओं को उत्तीर्ण करके गुरु कृपा का आकांक्षी अर्थात् एक ओर ज्ञान से दीप्त गुरु अपना सब कुछ देने के लिए सहर्ष तैयार और दूसरी ओर ज्ञान प्राप्ति का आकांक्षी शिष्य गुरु द्वारा दी जाने वाली ज्ञान की अजस्र धारा की एक-एक बूँद को ग्रहण करके ज्ञान की चिर संचित पिपासा को शान्त करने के लिए पूर्ण समर्पण के साथ तत्पर। यह देना और लेना शुद्ध आध्यात्मिक परमेश्वर के आशीर्वाद से भरा हुआ। वस्तुतः यही शिक्षा है। ईश्वर की कृपा से यह सम्बन्ध देश काल परिस्थिति से प्रभावित होता हुआ भी औपनिवेशिक काल तक येन-केन प्रकारेण भारतीय शिक्षा व्यवस्था में दिखाई देता रहा। गुरु अध्यापक

होते हुए भी गुरु ही कहलाता रहा, और ग्रामीण जीवन का नीति नियन्ता बना रहा। शिष्य विद्यार्थी, छात्र बना किन्तु वैसा ही प्रिय बना रहा। गुरु शिष्य के सर्वांगीण विकास के लिए तब भी यथाशक्ति व्यग्र रहा और शिष्य गुरु की आज्ञा का पालन करने का कार्य बदलती हुई परिस्थिति में तब तक करता रहा जब तक उसे औपनिवेशिक शिक्षा ने संक्रमित नहीं कर दिया।

तत्कालीन ज्ञानार्जन की प्रक्रिया में स्वाध्याय का बहुत अधिक महत्व था। शतपथ ब्राह्मण में इसका उल्लेख करते हुए कहा गया है कि इसके द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति, अलौकिक जगत की प्राप्ति एवं ज्ञान सम्भव हो जाता है। ऐसा माना जाता था कि वेदों के अध्ययन-अध्यापन से व्यक्ति को आत्मिक शांति प्राप्त होती है, व्यक्ति के अन्दर निरोधक शक्ति विकसित होती है, वह स्वावलम्बी, दृढ़ चरित्र एवं यशस्वी होता है। स्वाध्याय में मनन को अधिक प्राथमिकता दी जाती थी। शिक्षार्जन की दृष्टि से स्वाध्याय को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता था। जहाँ तक विद्यार्जन हेतु प्रयुक्त विधि का प्रश्न है विद्यार्थी की पूरी दिनचर्या ही विद्यार्जन की प्रत्यक्ष एवं परोक्ष विधियों द्वारा आच्छादित थी। अध्यवसाय की सम्पूर्ण क्रिया तीन मुख्य भागों में पूर्ण होती थी, श्रवण, मनन और निदिध्यासन। विद्यार्थी गुरु के मुख से निकली वाणी का सस्वर पाठ करता था, तथा उसे ध्यानस्थ होकर सुनाता था। वेदों के मौखिक अध्ययन-अध्यापन को उस काल में मान्यता प्राप्त थी। श्रवण का अर्थ है ज्ञानेन्द्रियों द्वारा शिक्षा ग्रहण करना, मनन का अर्थ है अन्तःकरण से ग्रहण की गई शिक्षा पर विचार और चिन्तन करना तथा निदिध्यासन का अर्थ है उसके साथ तादात्म्य का अनुभव करना। तत्कालीन पाठ्य विधि केवल रटना मात्र नहीं थी, अपितु सस्वर पाठ के साथ विशुद्ध व्याख्या, गूढ़ विषयों का गम्भीर चिन्तन, स्वाध्याय एवं प्रयोग द्वारा सीखने पर भी प्राचीन काल में पर्याप्त बल दिया जाता था। प्राचीन काल में वेद एवं वेदांग, उपनिषद शिक्षा के प्रमुख विषय थे। सूत्रकाल में व्याकरण, गणित, औषधि, विज्ञान, खगोल शास्त्र, आयुर्वेद, नीतिशास्त्र, आदि विषयों को भी सम्मिलित किया गया। इसके अतिरिक्त पशु चिकित्सा शास्त्र, सैनिक शिक्षा, कृषि विज्ञान एवं पशुपालन शिक्षा आदि भी अध्येय विषय के रूप में सम्मिलित हुए।

प्रत्येक नागरिक का यह धर्म है कि वह अपनी वाणी और अपने मधुर

व्यवहार से अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को तुष्ट और सुखी बनाये। यही व्यवहार व्यापक रूप से शील या चरित्र का आधार माना जाता है और इसी शील या चरित्र की शिक्षा विद्यार्थी के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीन काल में गुरुकुलों में बालक के प्रवेश अर्थात् उपनयन के बाद गुरु उसे सर्वप्रथम शिष्टाचार ही सिखाते थे। इस शिष्टाचार के अन्तर्गत बड़ों का सम्मान करना, शीलयुक्त सुसंस्कृत वाणी बोलना, अपनी प्रशंसा स्वयं न करना, दूसरों के प्रति उपकार का भाव रखना पर उसकी चर्चा सार्वजनिक रूप से न करना, किसी के द्वारा प्राप्त सहायता को सदा स्मरण रखना आदि आचरण सिखाये जाते थे। यह माना जाता था कि प्रत्येक श्रेष्ठ नागरिक को अनुशिष्ट, सभ्य, स्वस्थ, परहितकारी तथा उदार होना आवश्यक है। इन गुणों की पुष्टि के लिए वाणी की मधुरता, व्यवहार की शुद्धि तथा सत्यनिष्ठा ही परम आधार है। विद्यार्थी को पारिवारिक शील, सामाजिक शील, राष्ट्रीय शील और मानवीय शील का प्रत्येक परिस्थिति में पालन करना चाहिए। उसे ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे उसके परिवार, समाज अथवा राष्ट्र को लज्जित होना पड़े। उसे सबसे मिलकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि उसका देश समृद्ध, शक्तिशाली और समुन्नत हो। जो व्यक्ति अपने देश में निष्ठा न रखता हो, देश के सम्मान को हानि पहुँचाने का प्रयास करता हो अथवा अपने परिवार या अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहता हो उसका निर्भय और निष्पक्ष होकर विरोध करना चाहिए और उस विरोध के लिए जो भी त्याग या कष्ट सहन करना पड़े उसके लिए सदा तत्पर रहना चाहिए।

प्राचीनकाल में विद्या के केन्द्रों को गुरुकुल की संज्ञा दी जाती थी। ये अध्ययन के संस्थान, नगरों से दूर वनों में होते थे। स्थान का चयन करते समय यह सुनिश्चित किया जाता था कि वहाँ पर गायों को चरने के लिए विस्तृत स्थान है अथवा नहीं, जल, वृक्ष, आदि है या नहीं, शान्ति से अध्ययन किया जा सकता है या नहीं आदि क्योंकि विद्या के साथ तप, संयम, सहनशीलता, सदाचरण, कृतज्ञता, आत्मनिर्भरता सभी मानवीय गुणों की शिक्षा भी विद्या के संस्थानों से जुड़ी थी। गुरुकुल शब्द गुरु के साथ पूर्णरूपेण सम्बद्ध हो जाने की प्रक्रिया थी।

उपर्युक्त विवरण को यदि सार रूप में समझें तो यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था अपने सभी अवयवों यथा- गुरु की गुरुता, शिष्य

के विनय, शिक्षा संस्थानों (गुरुकुलों) के अनुशासन, अध्येय विषयों, अनुशासन एवं शील तथा उन सब में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध के पाश में बँधी थी। उपर्युक्त सभी क्रिया-कलापों की प्राण ऊर्जा धर्मसम्मत आचरण था। कोई भी कार्य, किसी भी प्रकार का व्यवहार धर्म से रहित नहीं था। भारतीय चिति और उसके दैवीय विराट दोनों में सामंजस्य, सामरस्य था। परिणामतः भारत विश्वगुरु की पदवी प्राप्त कर मानव मात्र को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करने की सामर्थ्य रखता था। यह स्थिति कालजनित परिवर्तनों के साथ लगभग वैसी ही चलती रही। औपनिवेशिक काल के पूर्वतक यद्यपि बहुत से आक्रमणों और विदेशी आक्रान्ताओं ने भारत के वैभव को तरह-नहस करने का पूरा प्रयत्न किया, किन्तु भारतीय जन-मानस की श्रद्धा एवं तात्कालीन श्रेष्ठ गुरुओं की राष्ट्र-भक्ति एवं कर्त्तव्य परायणता ने भारतीय चिति के स्वरूप को क्षतिग्रस्त होने से बचाये रखा। भारतीयों की धर्माच्छादित जीवन-शैली, राष्ट्र के प्रति प्रबल प्रेम एवं अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए प्राण भी अर्पित कर देने से पीछे न हटने की प्रबल इच्छा शक्ति एवं संकल्प ने इस राष्ट्र की चेतना को अक्षुण्ण बनाये रखा। औपनिवेशिक काल के पूर्व तक यह प्रवृत्ति राष्ट्र के प्रत्येक गाँव, जन-मन एवं शिक्षालयों में स्वतः ही दृष्टिगोचर थी। विदेशी यात्रियों द्वारा बड़ी स्पष्टता एवं प्रशंसाभाव से लिखे गये आख्यान इसके स्वतः प्रमाण हैं। यहाँ पर ऐसे कुछ उदाहरणों का उल्लेख करना समीचीन होगा।

ईसा से 300 वर्ष पूर्व ग्रीक राजदूत मेगस्थनीज ने भारतीय जन-जीवन की प्रशंसा करते हुए लिखा कि ''किसी भारतीय को झूठ बोलने का अपराध नहीं लगा। सत्यवादिता एवं सदाचार उनकी दृष्टि में बहुत ही मूल्यवान वस्तुएँ हैं।'' 7वीं शताब्दी में ह्वेन-इत-सांग ने भारतीय चरित्र की प्रशंसा करते हुए लिखा है- ''भारतीयों का चरित्र निर्मल होता है। अनधिकार रूप में वे किसी वस्तु को ग्रहण नहीं करते तथा दूसरों के प्रति आवश्यकता से अधिक विनम्र होते हैं। भारतीय प्रमाणिकता में सर्वश्रेष्ठ रहकर अपने वचन का पूर्ण निर्वाह करते हैं।''

यदि हम औपनिवेशिक काल के पूर्व की शिक्षा व्यवस्था का विश्लेषण करें तो यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था गुरु को केन्द्र में रखकर उसकी सम्मति के अनुसार ही व्यवस्थित की जाती थी। गुरु विद्याध्ययन के साथ-

साथ बालक के व्यक्तित्व को विकसित करने का भी गुरुतर कार्य करता था और पूरी निष्ठा एवं प्राणपण से भारतीय अस्मिता के अनुरूप नागरिक तैयार करने में लगा था। विद्यालय की पूरी व्यवस्था अध्यापक के अधीन ही होती थी। सरकार, राज्य अथवा ऐसी कोई केन्द्रीय व्यवस्था नहीं थी जो अध्यापक से ऊपर थी। विद्यालय की दिनचर्या अत्यन्त सरल, सहज एवं आडम्बरहीन थी। इसका उल्लेख करते हुए डॉ. बास्टोलिनिओ ने सन् 1776-1789 के अपने भारत प्रवास के विवरण में लिखा है ''भारत में बालकों के जन्म के समय से ही इस प्रकार लालन-पालन किया जाता है कि वह वहाँ की मिट्टी में लोट कर बड़ा होता है और बड़ा होकर हृष्ट-पुष्ट बलशाली नौजवान बन जाता है। इस देश में बहुत कम युवा दिखाई देते हैं जो कमजोर, अस्वस्थ शारीरिक दृष्टि से कृश हों।'' शिक्षा का कार्य और धनार्जन ये दोनों अलग थे। अर्थात् अध्यापक को गाँव के धनिकों द्वारा जो भी धन सम्मान पूर्वक दिया जाता था वह उसी में आनन्द से रहता था। उसकी वरीयता शिक्षादान थी, धन नहीं। एक विदेशी विद्वान ने तत्कालीन अध्यापकों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि ''यह देश प्रणम्य है जहाँ परम्पराओं का निर्वाह इतने समर्पण भाव से होता है।'' अध्यापकों का वर्णन करते हुए उसने कहा कि वह ''अत्यन्त सीधा सादा, विद्यार्थियों का हितचिन्तक, ज्ञानी और मितव्ययी होता था।'' अध्यापक आदरणीय इसलिए भी था क्योंकि वह उन्हीं मान्यताओं का संरक्षक, संवाहक एवं अन्तरणकर्त्ता था जो मान्यताएँ शिक्षा के उद्देश्यों, लक्ष्यों के रूप में वैदिक काल में मान्य थीं। यह कार्य वह अपने अंतःकरण में निहित दायित्व बोध के प्रति प्रतिबद्धता के कारण पूरे मनोयोग से करता था।

सीखने का तरीका औपनिवेशिक काल के शिक्षा में प्रभुत्व स्थापन के पूर्व में क्या था इसका एक उदाहरण पीटर डेलावेली ने स्वतः प्रेक्षण के आधार पर प्रस्तुत किया है। उन्होंने एक गाँव में मंदिर में चल रही पाठशाला के बरामदे में बच्चों को गणित का अभ्यास करते देखा। यह समूह चार बालकों का था। सर्वप्रथम अध्यापक ने अंकगणित के प्रश्न को हल किया और प्रत्येक विद्यार्थियों को उसका अभ्यास करने को कहा। उसके लिए चार-चार बालकों के समूह बना दिये गये। सर्वप्रथम एक बालक ने सीखे हुए पाठ के सस्वर दुहराया, तत्पश्चात्

उस बालक ने मंदिर के प्रांगण की भूमि पर उँगली से अपने अंकों को लिखा जिन्हें वह दुहरा रहा था। उसका अनुकरण बाकी तीन विद्यार्थियों ने भी किया। फिर पहले बालक ने बाकी बचे पाठ का भी उच्चारण उच्च स्वर में गाकर किया और बाकी तीन विद्यार्थियों ने उसी प्रकार उस बचे हुए पाठ को दुहराया। इस तरह कई बार अभ्यास कर के चारों विद्यार्थियों ने उस पाठ को कंठस्थ कर लिया। जब आस-पास की धरती आकृतियों एवं वर्णों से भर गई तब विद्यार्थियों ने उसके ऊपर थोड़ा सा बालू डाल दिया और आगे की पढ़ाई के लिए भूमि तैयार हो गई। इस प्रकार बिना किसी खर्च के अथवा बिना कागज, कलम, दवात के समूह में मिलजुलकर कार्य करने की कला भी पाठ के साथ विद्यार्थियों ने सीख ली। पीटर ने तत्कालीन शिक्षा की प्रशंसा करते हुए कहा कि ''बिना अध्यापक के एवं बिना किसी संसाधन के जिस प्रकार विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण कर रहे थे, वह अनुकरणीय था। वास्तव में सीखने की यह अत्यन्त सरल एवं सुरक्षित विधि है।'' इसी क्रम में एडम ने अपने प्रतिवेदन में बंगाल के ग्रामीण विद्यालयों की प्रशंसा करते हुए कहा कि ''विद्यालयों में जो कुछ भी पढ़ाया जाता था वह ज्ञान नागरिकों के दैनिक जीवन, व्यवसाय आदि को वास्तविक अर्थों में कुशलता प्रदान करने में सक्षम था।'' उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्टतः दृष्टिगत है कि तत्कालीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था लचीली, सबको समाहित करने में समर्थ एवं सबको शिक्षा के साथ-साथ शिक्षा में गुणवत्ता को प्रतिस्थापित करने वाली थी।

धर्मपाल द्वारा लिखित पुस्तक 'द ब्युटीफुल ट्री' में औपनिवेशिक काल की शिक्षा व्यवस्था का प्रामाणिकता के साथ विवरण दिया गया है और यह भी लिखा गया है कि किस प्रकार शिक्षा के इस सुन्दर वृक्ष को क्षत-विक्षत करके उसे भारतीय अस्मिता के विपरीत बनाने का कार्य किया गया। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की तुलना आदि वास्तविक प्राच्य व्यवस्था से करें तो यह स्पष्टतः दिखता है कि यह शिक्षा व्यवस्था भारत में दी अवश्य जा रही है पर यह भारतीय होने का भाव भरने में असमर्थ है। पुरुषार्थ चतुष्ट्य के जिस मुख्य पुरुषार्थ धर्म को आधार मानकर शिक्षा का ताना-बाना बुना गया था, जो शिक्षा का आधार था, वह अब गौण हो गया, शिक्षा अर्थ प्रधान हो गयी, गुरु का गरिमामय स्वरूप वेतन भोगी कर्मचारी में परिवर्तित हो गया, गुरु केन्द्र में न रहकर आवश्यकतानुसार प्रयुक्त

होने वाला एक घटक मात्र बन कर रह गया, राज्य सत्ता और अर्थ सत्ता के समक्ष धर्म सत्ता एवं ज्ञान सत्ता नतमस्तक हो गई। भारतीय होने का भाव और सर्वोपरि मानव होने के भाव पर संसाधन होने का भाव हावी हो गया। ऐसा लगता है कि पूरी शिक्षा व्यवस्था प्राणतत्वविहीन हो गई है। उसका दैवी विराट आसुरी विराट में परिवर्तित हो गया है। जिस शिक्षा पर समग्र मानव के निर्माण का दायित्व था और जो शिक्षा इस दायित्व का औपनिवेशिक काल तक अत्यन्त कुशलता से निर्वहन कर रही थी, वह दायित्व बोध क्षरित हो गया। शिक्षा अपने मूल कार्य राष्ट्रभक्त सद्नागरिक एवं सद्मानव निर्माण से कहीं भटक गई है। यह कहा जा सकता है कि शिक्षा एक संक्रमण काल से होकर गुजर रही है। यह एक अच्छी बात है कि इस दिशा में चिन्तन किया जा रहा है और वर्तमान शिक्षा को इसके मूल लक्ष्य की ओर ले जाने का प्रयास किया जा रहा है। शिक्षा व्यवस्था को पुनर्स्थापित करने के लिए इन बिन्दुओं पर गम्भीरता से चिन्तन करना होगा और योजनाबद्ध ढंग से कार्य करना होगा-

- शिक्षा को औपनिवेशिक प्रभाव से कैसे मुक्त किया जाय?

- शिक्षा में ज्ञान सत्ता को राज्य सत्ता और अर्थसत्ता से ऊपर कैसे पुनर्प्रतिष्ठित किया जाये?

- शिक्षक को उसके वेतनभोगी स्वरूप से कैसे मुक्त करके 'गुरु' पद पर प्रतिष्ठित किया जाय?

- गुरु और शिष्य के सम्बन्ध को कैसे पुनर्स्थापित किया जाये?

- विद्यार्थियों में भारतीय दृष्टि कैसे विकसित की जाये?

- विद्यार्थी के अंदर गुरु के प्रति आदर, ज्ञान के प्रति तत्परता, जिज्ञासा, प्रबल राष्ट्रप्रेम, सेवा भाव, कर्तव्य के प्रति विशिष्ट सजगता कैसे अन्तर्निवेशित की जाय?

- शिक्षकों के अंदर कर्तव्यबोध एवं दायित्वबोध को कैसे पुनर्जीवित किया जाये?

ऐसे अनेक प्रश्न भारतीय अस्मिता की शिक्षा में निरन्तरता के अवरोध के रूप में खड़े हैं। जब तक इन प्रश्नों, चुनौतियों का हल नहीं मिलेगा तबतक शिक्षा व्यवस्था उस मानव का निर्माण करने में सफल नहीं होगी जिस मानव की

कल्पना पं. दीनदयाल उपाध्याय जी ने इस शब्दों में व्यक्त की है-

''व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि और परमेष्टि इन चारों की एकात्मता का नाम है ''मानव''। मानव से परमेष्टि को निकाल दो, मानव में से समष्टि को निकाल दो, मानव में से व्यष्टि को निकाल दो तो मानव विकलांग हो जायेगा। इसलिए जो नीतियाँ बनानी हैं, जो कानून बनाना है, वह इस एकात्म मानव की शिक्षा कैसी हो, इस एकात्म मानव की अर्थव्यवस्था कैसी हो, इस एकात्म मानव की न्याय व्यवस्था कैसी हो, इस एकात्म मानव की सब व्यवस्थायें कैसी हों इसका विचार करें अनुसंधान करें।''

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था इस एकात्म मानव के चतुर्थांश व्यष्टि में ही उलझकर रह गई है जबकि प्राचीन काल की शिक्षा में यह सामर्थ्य था कि वह इस एकात्म मानव का निर्माण कर सके। यह सुखद है कि हमारे पास प्राचीन शिक्षा पद्धति की धरोहर है जो एकात्म मानव के निर्माण की परीक्षा में खरी उतरी है। इसे पाथेय के रूप में लेकर हम पुनः शिक्षा को उसकी क्षात्रशक्ति से परिपूरित कर सकते हैं। भारत को यदि ज्ञान के क्षेत्र में विश्वगुरु के स्थान पर पुनर्स्थापित करना है तो शिक्षा को भारतीय दृष्टि के अनुरूप परिवर्तित करना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है, जिससे बालक स्वयं का, समाज का, इस पूरी प्रकृति का एवं परमसत्ता का अंश बनकर सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय चिन्तन के लिए सशक्त, सक्षम बन सके। यह कार्य दुरूह नहीं है। प्रबल इच्छाशक्ति, धैर्य, सहिष्णुता, सत्याग्रह एवं सदिच्छा के साथ सही योजना बनाकर इस लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। ऐसी योजनाएँ बनाने और उनके वास्तविक क्रियान्वयन में अब देर नहीं होनी चाहिए। ये योजनाएँ धर्मसम्मत, भारतीय दृष्टि के अनुरूप, योग्य गुरु निर्माण, ज्ञानशक्ति को राज्य सत्ता एवं अर्थसत्ता से बड़ा बनाने, प्रबल राष्ट्रप्रेम, अच्छे शिष्य के निर्माण, विद्यालय के आनन्दपूर्ण वातावरण, शिक्षा में संज्ञानात्मक पक्ष के साथ भावात्मक एवं कौशल पक्ष को भी पूरा महत्व देने वाली हों तथा हृदय प्रधान तदीयत्व से भरे हुए मानव के निर्माण के लिए हों। शिक्षा को प्राणवान बनाने के लिए यह आमूलचूल परिवर्तन अनिवार्य है तभी पुनः समन्वयात्मक, समग्र एवं एकात्मवादी चेतना के आधार पर राष्ट्र जीवन की संरचनाओं को आगे बढ़ाया जा सकेगा।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. सिंह, चन्द्र प्रकाश (सम्पादक) : एकात्म मानववाद : विभिन्न आयाम, अरुन्धती वशिष्ठ अनुसंधा पीठ, प्रयाग। (2016)
2. मिश्र, विद्यानिवास : अध्यापन : भारतीय दृष्टि, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली। (1998)
3. तैलंग, लता पंत (संपादक) : वैदिक कालीन चिन्तन के विविध आयाम पब्लिकेशन डिविजन, शिव प्रताप मेमोरियल फाउन्डेशन, वाराणसी। (2013)
4. तोमर, लज्जाराम : प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली। (2000)
5. श्रीवास्तव, शंकरशरण : भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान (सम्पादक), भारतीय शिक्षा शोध संस्थान, लखनऊ। (2008)

सबसे बड़ी क्षति हमें भारत के पहचान की हुई है। अत्यंत प्राचीन काल से भारत की गरिमा संसार में एक आध्यात्मिक गुरु के रूप में रही है। इस देश को सेक्युलर राज्य घोषित करके तथा उसका व्यवहारिक अर्थ धर्मनिरपेक्ष राज्य के रूप में करके इस देश के मूल पहचान को समाप्त करने की कोशिश की गई है। आज हर क्षेत्र में इसके लक्षण प्रगट होते दिखाई दे रहे हैं। सेक्युलर का अर्थ पंथ निरपेक्ष है किन्तु भारत में सभी राजनीतिक दलों द्वारा उसे धर्मनिरपेक्ष के रूप में व्यवहार में लाया जा रहा है। यहाँ तक कि हमारी नौकरशाही भी उसे इसी रूप में मानती आ रही है। धर्मनिरपेक्ष के अर्थ आज धर्मरहित इस रूप में व्यवहारित हो रहा है। यह इस पावन देश और समाज की सही व्याख्या नहीं है। भारत एक आध्यात्मिक देश है। दुनिया के किसी भी कोने का व्यक्ति भारत में यदि भ्रमण करेगा तो पग-पग उसे यही अनुभूति होगी।

- श्रद्धेय 'अशोक सिंहल'

अरुंधती वशिष्ठ अनुसन्धान पीठ

महावीर भवन, 21/16, हाशिमपुर रोड, टैगोर टाउन, इलाहाबाद-211002
फोन एवं फैक्स : 91-532-2466563, मो0 919453929211
E-mail : nationalthought@gmail.com

978-81-931312-4-4

Price : 150/-